विरह-भजन

श्रीगुरुदेवसे कृपा प्राप्तकर जो उनके प्रति अपनी असीम कृतज्ञताको अनुभव कर रहे हैं तथा जिन्होंने विश्रम्भ-भावसे (अन्तरङ्गतासे) उनकी प्रचुर सेवा की है, केवल वे सौभाग्यशाली जन ही उन श्रीगुरुदेवसे विरहका अनुभव करेंगे, वे ही उनके लिए क्रन्दन करेंगे।

जिनको विप्रलम्भका कुछ अनुभव है, केवल वे ही सम्भोग-लीलाका आस्वादन कर सकते हैं। विप्रलम्भ-भावका अनुभव करना हमारे साधन-भजनका मुख्य और अन्तिम लक्ष्य है। यदि यह प्राप्त हो गया, तो हम सब कुछ अनुभव कर सकते हैं।

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन
GVP

।। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ।।

श्री श्री भागवत पत्रिका

वर्ष-८ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या-(१-२)

विरह-विशेषांक-२

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

वर्ष ✿ ८

श्रीगौराब्द ५२५, विष्णु–मधुसूदन मास
वि. सं. २०६८, चैत्र–वैशाख मास ; सन् २०११, २० मार्च–१७ मई

संख्या ✿ १–२

विषय–सूची

विरह-विशेषांक (संख्या—२)

श्रीनारायण–पञ्चदशकम् ४
श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज

'वैष्णव शरीर अप्राकृत सदा' १०

'वैष्णव' कर्मफलबाध्य नहीं १०
श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

अप्राकृत वैष्णवोंमें देह और देहीका भेद नहीं; वे नित्य, अप्राकृत और सनातन १४
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

आविर्भाव–शक्तिके द्वारा जगतमें प्रकटन एवं तिरोभाव–शक्तिके द्वारा प्रकट–प्रकाशसे अन्तर्धान १८

विरह–भावावली २४

श्रील गुरुदेवके प्रति उनके समकालीन गौड़ीय–वैष्णवोंकी पुष्पाञ्जली ४७

श्रीश्रीमद्भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजकी मधुर स्मृतियाँ ४७

विरहमें मनोहर स्मृतियोंका स्मरण ४९
श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रसाद पुरी महाराजजीकी स्नेहपूर्ण स्मृतियाँ ५४

विरह–संवाद ५५
श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके प्रकाशनके सम्बन्धमें विवरण.. ५५
विशेष ज्ञातव्य ५५
श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके ग्राहकोंसे वार्षिक सदस्यता–शुल्क भुगतानके लिए निवेदन.................. ५६

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा–स्रोत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी,
श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज,
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज

प्रचार सह–सम्पादिका—श्रीयुता उमा देवी दासी,
श्रीयुता सुचित्रा देवी दासी

सहकारी सम्पादक संघ—

(१) डॉ. श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, पी–एच. डी., डी. लिट्. (संघपति)
(२) डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी–एच. डी.
(३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज
(४) डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी–एच. डी.
(५) श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'
(६) श्रीपुरन्दर दास ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह'

कार्याध्यक्ष—श्रीपाद प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल—श्रीविजयकृष्ण दास ब्रह्मचारी, श्रीमदनमोहनदास ब्रह्मचारी, श्रीप्राणकृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीगौरराजदास ब्रह्मचारी, श्रीसञ्जय दास ब्रह्मचारी, श्रीजगदीशप्रसाद दासाधिकारी, भक्त सोनु

ले–आउट और डिजाइन—श्रीकृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी, श्रीविकास ठाकुर

प्रकाशक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज, पी–एच. डी.

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा–२८१००१ (उ. प्र.)
दूरभाष : 08791273306

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

Visit us at:
www.bhagavatpatrika.com
e-mail:
mathuramath@gmail.com,
vijaykrsnadas@gmail.com

विरह–विशेषांक

(संख्या–२)

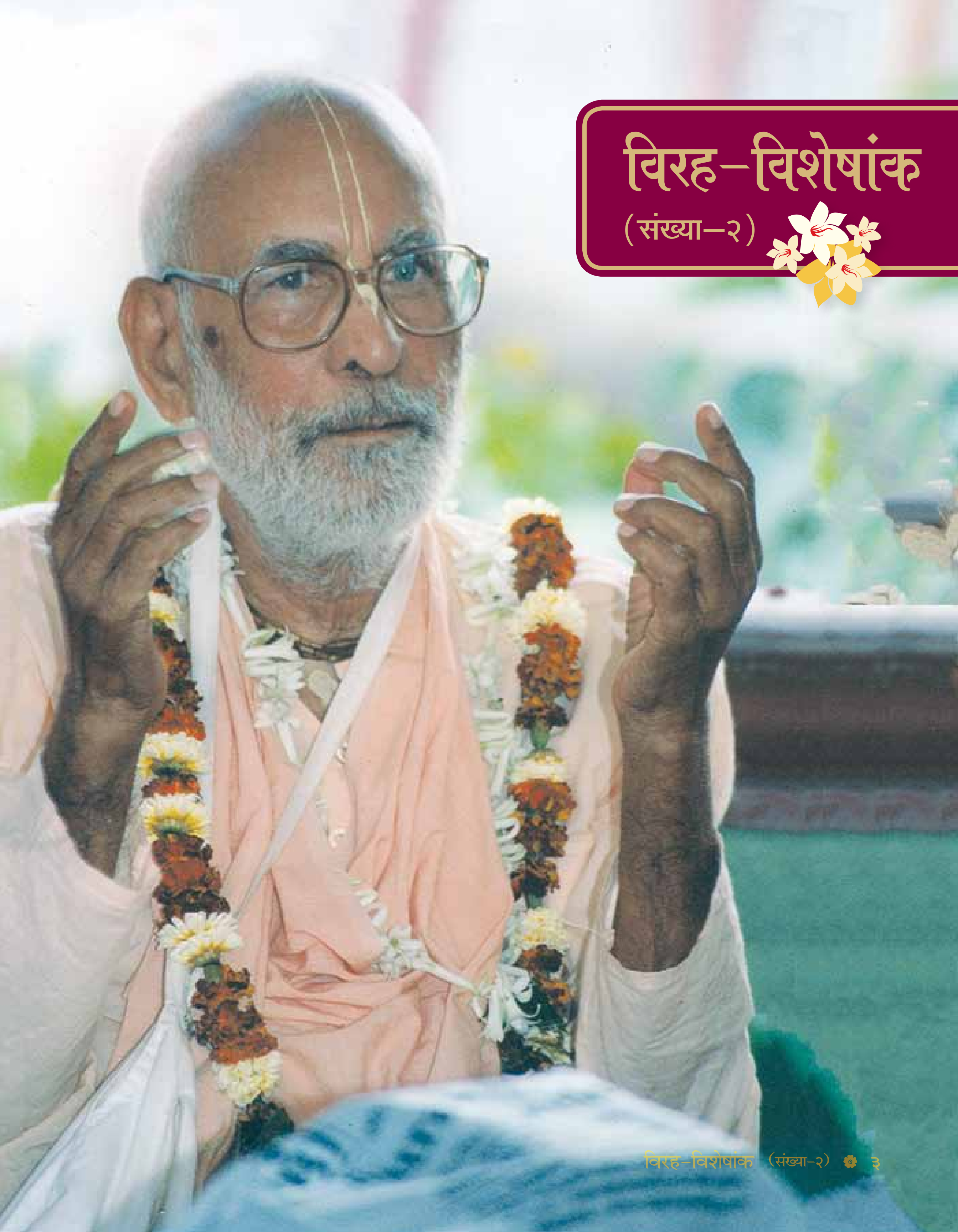

श्रीनारायण–

श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज

श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्येन विज्ञापितं मतम्।
क्व गतो भक्तिवेदान्तनारायणो यतिर्महान्॥१॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मतको पृथ्वीपर प्रचार करनेवाले, महात्मा, यतिराज श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये?॥१॥

विज्ञातशास्त्रतात्पर्यः सद्गुणकीर्तिमण्डितः।
क्व गतो रागमार्गैकवैशिष्टगायकाग्रणी॥२॥

शास्त्रोंके तात्पर्यको जाननेवाले, सद्गुणरूप कीर्तिसे मण्डित, रागमार्ग–भक्तिके वैशिष्ट्यको ही गायन करनेवालोंमें अग्रणी श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये?॥२॥

पञ्चदशकम्

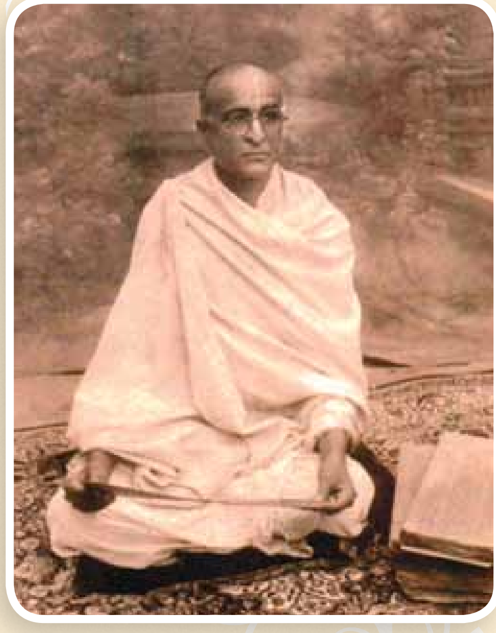

सारस्वतकुलोत्तंसो भागवतगुणान्वयी।
क्व गतः पण्डितैर्मान्यो गौरकृष्णैकपार्षदः॥३॥

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके कुलके भूषणस्वरूप, श्रीमद्भागवतमें वर्णित महाभागवत भक्तोंके गुणोंके आश्रय, पण्डितोंके मान्य और गौरकृष्णके पार्षद श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥३॥

अपसिद्धान्तध्वान्तार्कः सद्धर्मकौमुदीन्दुकः।
क्व गतो गुर्वभीष्टकृद्गौस्वाम्यादर्शमन्दिरः॥४॥

अपसिद्धान्तरूपी अन्धकारके विनाशमें सूर्यकी भाँति तेजस्वी, सद्धर्मरूप कुमुदके प्रकाशमें चन्द्रमाकी भाँति स्निग्ध हृदययुक्त,

गुरुवर्गके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेवाले और षड् गोस्वामीजनोंके आदर्शके मन्दिर (आलय) स्वरूप श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥४॥

द्विजवंशप्रदीपाहो वरेण्यवृन्दवन्दित:।
क्व गतो नतसर्वस्वो विश्वविश्रुतवैष्णव:॥५॥

अहो! द्विजवंशके प्रदीप, पूजनीय कुलके द्वारा भी वन्दित, प्रणतजनोंके सर्वस्व, विश्वविश्रुत वैष्णवप्रवर श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥५॥

एकचक्रधामेश्वर श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु

प्रीतिमैत्रीकृपाकन्दो नित्यानन्दप्रकाशक:
क्व गत: केशवस्वामीश्रीधरपदसम्पद:॥६॥

प्रीति, मैत्री और कृपासे परिपूर्ण, नित्यानन्द प्रकाशविग्रह, श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजके सम्पद–स्वरूप श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥६॥

माधुर्यौदार्यभावाढ्यो गौड़ीयाचार्यशेखर:।
क्व गतो माधवप्रेमानन्दतीर्थवनाश्रय:॥७॥

माधुर्य और औदार्य भावोंसे युक्त; गौड़ीय–आचार्य शिरोभूषण; श्रीपाद तीर्थ महाराज, श्रीपाद माधव महाराज,

श्रीपाद प्रेमानन्द प्रभु और श्रीपाद वन महाराजके आश्रय श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥७॥

जीवप्रबोधने दक्षः सौभाग्यसाधुभूषणः।
क्व गतो वैष्णवानन्दिसदाचारचरित्रवान्॥८॥

जीवको उसके स्वरूप–ज्ञानके प्रति जाग्रत करनेमें दक्ष, अप्राकृत–सौभाग्यसे युक्त, साधु–समाजमें भूषण–स्वरूप, वैष्णवजनोंमें आनन्दका संचार करनेवाले, सदाचार सम्पन्न एवं परम चरित्रवान् श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥८॥

नैष्ठिकः स्वेष्टसेवादौ प्रामाणिक नैतिकः।
क्व गतो रसिकानन्दिभक्तिचातुर्यचर्चितः॥९॥

अपने इष्टकी सेवाओंमें निष्ठायुक्त, प्रामाणिकप्रवर (श्रेष्ठ प्रमाणस्वरूप), परमार्थ नीति परायण, रसिकजनोंको आनन्द प्रदान करनेवाले, भजन–चातुर्यसे मण्डित श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥९॥

सद्ग्रन्थादि सदाचारसम्पादकः सुधीप्रियः।
क्व गतः श्रीविनोदांघ्रिमकरन्दमधुव्रतः॥१०॥

देश–विदेशमें भक्ति–सदाचार तथा सद्ग्रन्थादिके सम्पादक (संस्थापन करनेवाले), सुधीजनोंके प्रिय, श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीके चरणकमलोंके मधुपानमें रत श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये? ॥१०॥

दीक्षा–शिक्षागुरुः सतां सद्धियां वर्त्मदेशिकः।
क्व गतो दीनवत्सलो वरपतितपावनः॥११॥

साधुजनोंके दीक्षा और शिक्षागुरु तथा सज्जनोंके धर्ममार्ग प्रदर्शक, दीनवत्सल, महा–पतितपावन श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामिपाद कहाँ चले गये?॥११॥

हा हा गुरो तिरोधाने त्वयि सज्जनवैष्णवाः।
गुणानि ते स्मरन्तोऽहो विलपन्ति सदाशयाः॥१२॥

हा हा गुरुदेव! आपके तिरोधान हेतु सज्जन–वैष्णवजन आपकी गुणावलीका स्मरण करते–करते विलाप कर रहे हैं॥१२॥

कदा ते चरणोपान्ते वसन् तव कथामृतम्।
पिबानि वैष्णवैः पुनः तद्विधेहि कृपानिधे॥१३॥

(पुनः) कब मैं आपके चरणाकमलोंके निकट बैठकर आपके मुखारविन्दसे विगलित हरिकथामृतका पान करूँगा? हे कृपासिन्धु! इसका विधान कीजिये॥१३॥

**सान्निध्यं ते महोदय याचे जन्मनि जन्मनि।
आदर्शन्ते तथा प्रार्थ्यं कृपां कुरु नमोऽस्तु ते॥१४॥**

हे महामहिम! हम प्रति जन्ममें ही आपके पावन सान्निध्यकी याचना करते हैं। आपका आदर्श हमारे लिए प्रार्थनीय है। कृपा कीजिये, आपको नमन करते हैं॥१४॥

**रमणमञ्जरीनाम्नी विनोदमञ्जरीसखी।
युगलसेवने जीयान्नित्यलीलाविलासिनी॥१५॥**

श्रीविनोदमञ्जरीकी सखी, नित्यलीला–विलासिनी– '**श्रीरमणमञ्जरी**' नामसे प्रसिद्ध (नित्य–सखी) युगलकिशोरकी सेवामें जय युक्त हों॥१५॥

[श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज नित्यलीलाप्रवीष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित (दीक्षा–शिष्य) हैं तथा नित्यलीलाप्रवीष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजसे संन्यास ग्रहण किए हैं।]

'वैष्णव' कर्मफलबाध्य नहीं

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके चतुर्दश वार्षिक विरह–महोत्सवमें प्रदत्त वक्तृताके कुछ अंश
(नीलिमा, चक्रतीर्थ समुद्रतीर, पुरी, १९२८)

'वैष्णव' महिमा कीर्त्तन

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

मैं सभी वैष्णवोंको नमस्कार करता हूँ—एकबार नहीं, दो बार नहीं, अपितु अनेक बार करता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरा और कोई कार्य ही नहीं है। 'म'—कार का अर्थ है—अहंकार; मैं उसी अहंकारका त्याग करके नमस्कार करता हूँ।

वैष्णवगण **'वाञ्छाकल्पतरु'** होते हैं। जिस प्रकार इस जड़ जगतमें कल्पवृक्ष प्रार्थीकी प्रार्थनाके अनुसार फल प्रदान करते हैं, उसी प्रकार अप्राकृत वैष्णव—ठाकुरके निकट जो प्रार्थना की जाती है, वे उसे पूर्ण करते हैं। किन्तु प्राकृत—जगतके कल्पवृक्ष अस्थायी जागतिक फल दान करते हैं और अप्राकृत वैष्णव—ठाकुर अखण्ड—परम—फल अथवा नित्य प्रयोजन दान करते हैं।

वैष्णव—ठाकुर **'कृपासिन्धु'** अर्थात् कृपाके समुद्र होते हैं। वे अयाचित भावसे सम्पूर्ण दया करते हैं। उनका भाण्डार अल्प नहीं होता और न ही उस भाण्डारमें कोई अभाव होता है। प्राकृत—जगतके समुद्रके सूख जानेकी सम्भावना होनेपर भी वैष्णवोंकी कृपाका भाण्डार कभी अपूर्ण नहीं होता। उस भाण्डारका धन दूसरोंको देनेपर भी उस भण्डारमें क्षय या हानि नहीं होती। **'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥'** (बृदारण्यकोपनिषद् ५/१) [अर्थात् यह अवतारी पुरुष पूर्ण हैं और उनसे निकला यह अवतार भी पूर्ण है। पूर्णसे पूर्ण ही आविर्भूत होता है तथा पूर्णसे पूर्ण निकाल लेनेपर पूर्ण ही अवशेष रहता है। परमेश्वरकी पूर्णताको किसी प्रकारकी भी हानि नहीं पहुँचती है।] ऐसे वैष्णव—ठाकुरको मैं नमस्कार करता हूँ।

वैष्णवगण **'पतितपावन'** होते हैं। इस जगतमें मुझे पवित्र करनेवाला और कोई नहीं है। यहाँ अर्थात् इस मर्त्य जगत्में एक व्यक्तिके साथ दूसरे व्यक्तिके मिलने या एक दूसरेको देखनेपर ईर्ष्याके कारण अहंकार उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति अपनी अपेक्षा दूसरेको नीच, क्षुद्र, दरिद्र, मूर्ख, अधम इत्यादि भावसे देखता है, किन्तु वैष्णव—ठाकुर ऐसे नहीं होते। मैं पतित हूँ; कृष्णको भूलकर विषय—भोगोंमें प्रमत्त हूँ। मेरे 'चक्षु' मेरे परम शत्रु हैं, ये सर्वदा जड़—रूप—आकारसे उत्पन्न मोहमें प्रमत्त हैं; 'कान' अपनी प्रशंसा सुननेमें व्यस्त हैं; 'जिह्वा' सुस्वादु द्रव्योंके संग्रहमें; 'नाक' सुगन्ध ग्रहण करनेमें; 'त्वचा' कोमल वस्तुका स्पर्श करनेमें एवं 'मन' विषयोंकी चिन्तामें मत्त है। इस प्रकार मैं पूर्णता भगवान्से विमुख हो गया हूँ। जब मैं अपनी अवस्थापर विचार करता हूँ, तो देखता हूँ कि मैं उच्च स्थितिमें था, (किन्तु) अब अधःपतित हो गया हूँ। मैं नारकी हूँ, पापिष्ठ हूँ। मेरे जैसे जीवोंका उद्धार करनेमें वैष्णव—ठाकुर व्यस्त हैं। जीवोंपर दया करनेके अतिरिक्त उनका और कोई कार्य ही नहीं है। उनका आश्रय ग्रहण करनेके अतिरिक्त मेरा और कोई कर्त्तव्य नहीं है, उनके आश्रयके बिना मेरी अन्य कोई गति नहीं है। जितने भी अहंकार हैं अर्थात् दर्शनकारी, स्पर्शकारी, ग्रहणकारी और चिन्तनकारीके सूत्रमें जितने भी अभिमान हैं, जो अभिमान इन्द्रियोंसे उत्पन्न वृत्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—जिस वृत्तिके कारण मैं पतित और भगवद्दर्शनसे वञ्चित हुआ हूँ, मैं उस अभिमानको छोड़कर आज वैष्णवोंके शरणागत होता हूँ। मैं आज जिस जगत्में उपस्थित हूँ, वहाँकी प्रत्येक वस्तु ही मुझे आकृष्ट कर रही है। जब मैं अपनी इस दुरावस्थापर विचारकर देखता हूँ कि मेरे समान नारकी और कोई नहीं है, तभी यह बात समझ आती है कि वैष्णोंके चरणकमलके आश्रयके अतिरिक्त मेरी और कोई गति नहीं है।

'वैष्णव' ही हमारे एकमात्र आत्मीय

जगतमें सभी मेरा सर्वनाश करनेके लिये प्रस्तुत हैं। इस बान्धवहीन देशमें 'आत्मीय' नामधारी सभी भगवद्भजनके प्रतिकूल हैं। आत्मीयके रूपमें एकमात्र वैष्णवोंका आश्रय

छोड़कर हमारे लिये और कोई उपाय नहीं है। किसी भी मनुष्यके लिये दूसरा कोई भी कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं है—सभी मिलकर केवलमात्र भगवान्के सेवकोंकी सेवा करो। 'तूर्णं यतेत अर्थात् तुरन्त सचेष्ट होओ'—काल विलम्ब करनेपर असुविधामें पड़ना होगा।

'वैष्णव'—विष्णु सम्बन्धी या विष्णुकी वस्तु

'वैष्णव' शब्द सुनकर अनेक लोग यह विचार करेंगे कि ये विष्णुके उपासक एक सङ्कीर्ण साम्प्रदायिक जीवविशेष हैं, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। भगवान्में विश्वास करनेवाले लोग जानते हैं कि भगवान् सम्पूर्ण जगतमें व्याप्त हैं, अन्तर्यामीके रूपमें वे सर्वत्र अवस्थित हैं। एक ओर वे भूमा, व्यापक हैं और दूसरी ओर वे प्रत्येक त्रसरेणु (hexatom) के भीतर अपने असीम वैकुण्ठ-राज्यको धारण करनेमें समर्थ हैं। मनुष्यकी बुद्धिमें 'ईश्वर' और 'ब्रह्म' शब्द जिस वस्तुको ज्ञापन करते हैं, 'विष्णु' शब्दसे उसे नहीं समझा जाता। 'विष्णु' शब्द—विभुता या व्यापक धर्मसूचक है, एक साम्प्रदायिक शब्द नहीं। 'वैष्णव' ही उन भगवान्के एकमात्र सेवक हैं। उनके साथ भगवान्का कोई भेद नहीं है। **वैष्णव—भगवान्के अभिन्न कलेवर हैं। इस 'वैष्णव' शब्दसे विष्णु-सम्बन्धी अर्थात् विष्णुकी वस्तु (paraphernalia) को समझा जाता है।** वे आत्मधर्मवित् हैं तथा वे जड़जगतके सीमित-धर्मका अतिक्रम किये हैं। **जिन्होंने मानवके सङ्कीर्ण विचारोंका अतिक्रम किया है, वे ही 'वैष्णव' हैं।** तथा ऐसा भी नहीं है कि 'वैष्णव' शब्द कहनेसे अवैष्णवताको छोड़कर सङ्कीर्णताका आरोप किया जाय। हम ऐसे वैष्णवोंके चरणकमलोंमें नमस्कार करते हैं।

'वैष्णव' कृपा बिना 'वैष्णव' दर्शन असम्भव

'वैष्णव' अन्य जीवोंके समान नहीं हैं। वे श्रीचैतन्यके आश्रित, श्रीकृष्णसेवामें नियुक्त हैं। प्रत्येक कार्यमें, जीवन-मरणमें वे श्रीचैतन्य चरणोंको छोड़कर अन्यकार्यमें व्यस्त नहीं होते। जब मनुष्य अपने चश्मेंके द्वारा वैष्णवोंको देखना चाहता है, तब वह ठीक प्रकारसे उन्हें देख नहीं पाता। एकमात्र वैष्णवोंकी कृपाके आलोकसे ही उन्हें देखा जा सकता है।

'वैष्णव' कर्मफलबाध्य नहीं

साधारण-मनुष्यकी मृत्यु होनेपर शोकसभा आदि होती है, किन्तु हमारे लिये आज महा-आनन्दका दिन है, क्योंकि आज एक वैष्णव सम्राटकी अप्रकट तिथि है। कर्मफलसे बाध्य जीवके लिए जन्म-मृत्यु होती है। मृत्युका दिन ही उस जीवके अन्तिम-विचारका दिन होता है अर्थात् जीवित अवस्थामें उसने जो सभी सुकर्म, कुकर्म और अकर्म किये हैं, उन सभी कार्योंके अन्तिम-विचारका दिन होता है। मानवके लेने-देनेका अन्तिम दिन ही उसका मृत्यु-दिवस होता है। उस दिन जीवके दण्ड और पुरस्कारका काल

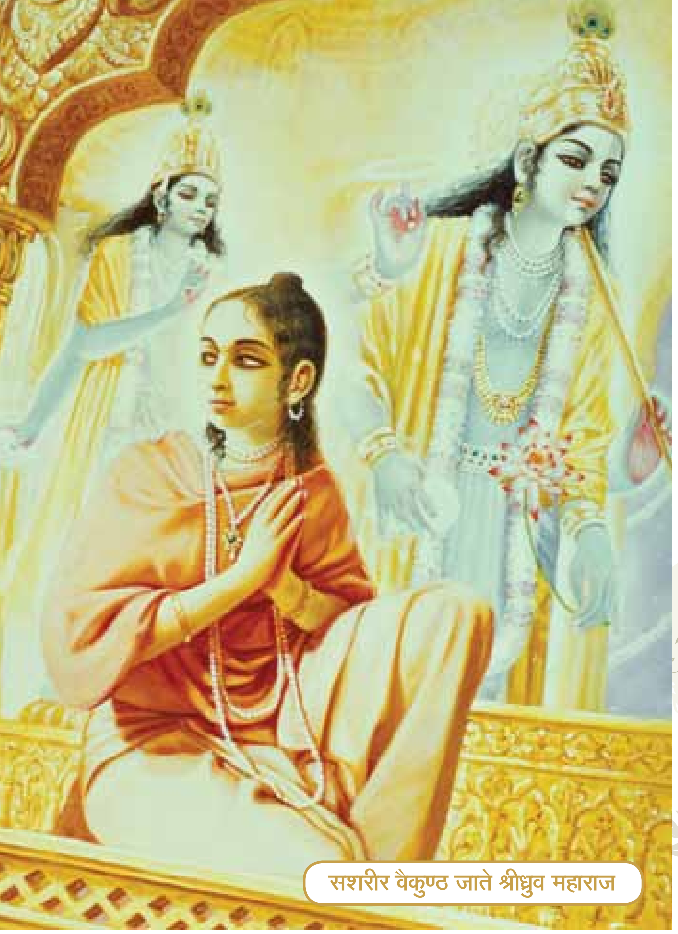
सशरीर वैकुण्ठ जाते श्रीध्रुव महाराज

वैष्णवोंकी मृत्यु नहीं होती। वे अमर हैं। वे भगवान्‌के साथ उनकी नित्यलीलामें नियुक्त हैं, उनका कार्य केवलमात्र कृष्णसेवा है। उनका प्रकटकालीन कार्य भी कृष्णसेवा है एवं इस जीवनके उपरान्त कालमें भी उनका कार्य—निरन्तर कृष्णसेवा ही है। भगवान्, भक्ति और भक्त नित्य हैं।

उपस्थित होता है। **किन्तु वैष्णवोंके विषयमें ऐसा विचार नहीं होता, क्योंकि वे कर्मफलबाध्य नहीं होते।** साधारण जीव कर्त्तापनका अभिमान और फलकी आकांक्षा लेकर कर्म करता है, अतः वह अपने उन–उन कर्मोंके अच्छे अथवा बुरे फलको प्राप्त करता है। मृत्यु उन्हीं अच्छे और बुरे फलकी प्राप्तिका दिन है। पाश्चात्य देशोंमें इस दिनको 'Day of Judgement' कहते हैं।

वैष्णवोंकी मृत्यु नहीं

अवैष्णवधर्म ग्रहण करनेवालेका मङ्गल नहीं है। वैष्णवोंके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेवालेके लिए समस्त प्रकारका मङ्गल—हाथमें रखे आँवलेके समान हैं। अवैष्णवोंने ही जन्म–मरणकी मालाको गलेमें धारण कर रखा है। हरि–परायणजनोंको कभी भी माताके गर्भमें पुनः जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता। वैष्णवोंकी बात तो दूर रहे, जिन्हें वैष्णवोंके अलौकिक, असामान्य चरणकमलोंका दर्शन करनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनका भी पुनर्जन्म नहीं होता है। ऐसे एक वैष्णवकी विरह तिथिपर उनकी कथा स्मृतिपथपर लानेके लिये ही यह महोत्सव है। यहाँ लोग कह सकते हैं कि—"विरहके अवसरमें आनन्दोत्सव किस प्रकार हो सकता है? इस जगतमें इस दिन तो शोकसभा ही होती है?" इसका उत्तर यह है कि **वैष्णवोंकी मृत्यु नहीं होती। वे अमर हैं। वे भगवान्‌के साथ उनकी नित्यलीलामें नियुक्त हैं, उनका कार्य केवलमात्र कृष्णसेवा है। उनका प्रकटकालीन कार्य भी कृष्णसेवा है एवं इस जीवनके उपरान्त कालमें भी उनका कार्य—निरन्तर कृष्णसेवा ही है। भगवान्, भक्ति और भक्त नित्य हैं।**

(साप्ताहिक गौड़ीय खण्ड—६, संख्या—४८)

अप्राकृत वैष्णवोंमें देह और देहीका भेद

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

(सितम्बर, १९३४ के दिन श्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी शुभ आविर्भाव–तिथिके अवसरपर श्रीधाम मायापुरमें स्थित श्रीचैतन्यमठके अविद्याहरण नाट्यमन्दिरमें दिये गये प्रवचनके कुछ अंश)

हम जन्म और मृत्युके सम्बन्धमें जो जानते हैं, श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सम्बन्धमें वह प्रयोज्य नहीं है। वैष्णवगण जन्म और मृत्यके स्थानपर आविर्भाव–तिरोभाव, प्रकट–अप्रकट आदि शब्द व्यवहार करते हैं। 'जन्म' और 'मृत्यु' शब्दसे एक प्रकारका हेय, अनुपादेय एवं शोक–दुःखका भाव चित्तमें प्रकाशित होता है। किन्तु प्रकट–अप्रकट, आविर्भाव–तिरोभाव—इन समस्त शब्दोंके द्वारा उस प्रकारके भाव उदित नहीं होते। वस्तुतः वैष्णवोंके आविर्भाव–तिरोभावमें जन्म–मृत्युके समान किसी प्रकारकी क्लेशपूर्ण क्रिया नहीं रहती। इसलिये वैष्णवगण साधारणतः जन्मके स्थानपर 'आविर्भाव या प्रकट' एवं मृत्युके स्थानपर 'तिरोभाव या अप्रकट' शब्द व्यवहार किया करते हैं।

हम श्रीचैतन्यदेवके लीला–ग्रन्थसे यह जान पाते हैं—

अद्यापिह सेइ लीला करे गौरा राय।
कोन–कोन भाग्यवान् देखिवारे पाय॥

(श्रीचैतन्यभागवत मध्य २३/५१३)

[अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु आज भी उन लीलाओंको कर रहे हैं, किन्तु कोई–कोई सौभाग्यवान् जीव ही उन लीलाओंको देख पाते हैं।]

इस उक्तिके द्वारा हम यह समझ सकते हैं कि श्रीचैतन्यदेवके नित्य सेवकगण नित्यकाल

नहीं; वे नित्य, अप्राकृत और सनातन

ही अवस्थान करते हैं। यद्यपि हममेंसे कुछ लोगोंने कुछकाल–पूर्व श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया था, किन्तु वर्त्तमानमें उन्हें न देख पानेके कारण हम उनके नित्य अवस्थानके सम्बन्धमें सन्देह कर सकते हैं। तथापि यह समझना चाहिये कि इन जड़–नेत्रोंसे न दिखलायी देनेपर भी वे आज भी वर्त्तमान हैं। आपलोग इससे विस्मित मत होना, मैं सत्य–सत्य ही कह रहा हूँ—वे आज भी वर्त्तमान हैं। इस विषयमें एक उदाहरण देकर मैं आपके संशयको किञ्चित दूर करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ।

मान लीजिये कि हम किसी एक मार्गके निकट स्थित किसी घरकी खिड़कीके निकट बैठे हैं। तब देखा गया कि एक व्यक्ति उस मार्गसे पैदल जा रहा है। उस खिड़कीसे हमारी दृष्टि जितनी दूर तक गयी, उतनी दूरतक हम उस व्यक्तिको देख पाये, इसके पश्चात् वह व्यक्ति अदृश्य हो गया। आपलोग इस उदाहरणका किञ्चित अनुधावन करके देखिये। जिस व्यक्तिको हमने खिड़कीसे मार्गपर देखा था, हमारे दृष्टिगोचर होते ही हमने उसके अस्तित्वको स्वीकार किया, किन्तु दृष्टिसे दूर होनेपर वह अस्तित्वहीन हो गया अथवा उसकी सत्ताका लोप हो गया—इस प्रकारका विचार करना निश्चित ही बुद्धिमता नहीं है। वह व्यक्ति हमारे दृष्टिगोचर होनेसे पूर्व भी था तथा हमारे सामनेसे अदृश्य होनेके बाद भी वह विद्यमान है—ऐसा ही समझना होगा। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी आविर्भाव–तिरोभाव क्रियाको भी इस उदाहरणके साथ युक्त कर लेनेपर हमारा संशय कुछ परिमाणमें दूर हो सकता है। अतः हमारे प्राकृत–नेत्रोंके दृष्टिगोचर न होनेके कारण वे आज वर्त्तमान नहीं हैं, यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं है। वैष्णवगण नित्य हैं—उनका शरीर अप्राकृत और नित्य है—जन्म–मरणके समान परिवर्त्तनशील हेय धर्म उनमें नहीं है और न ही कभी हो सकता है।

अब वैष्णवोंका शरीर अप्राकृत होता है—इस बातपर आपको सन्देह हो सकता है। आपलोग मन–ही–मन यह विचार कर सकते हैं—'ठाकुर महाशय जो देह लेकर जगतमें आविर्भूत हुए थे, अप्रकटके समय वे उस देहका त्याग करके ही चले गये। हमने उनकी उस स्थूलकाय देहका उनके अप्रकटकालमें स्पर्श किया था एवं उनकी उसी देहको समाधि भी दी थी। अतः उनके नित्यधाममें प्रयाणकालके समय हमने पहले उनको जिस देहमें देखा था, उस देहको वे नित्यधाममें लेकर नहीं गये। हम बद्धजीवोंमें देह और देहीका जैसा भेद है, श्रील ठाकुरमें भी वैसा ही भेद है, तभी उन्होंने उस देहको रखकर देहीरूपमें निर्याणको अङ्गीकार किया।' आपलोगोंके द्वारा इस प्रकार 'पूर्वपक्ष' अथवा सन्देह करनेके यथेष्ट कारण हैं। किन्तु वैष्णवोंके विषयमें इस प्रकार सन्देह करनेपर हमारा भीषण अमङ्गल होगा। यद्यपि हम बहुतबार यह सुनते आ रहें हैं कि 'वैष्णवोंका शरीर अप्राकृत होता है', तथापि हमारे चित्तका सन्देहरूपी मल किसी प्रकारसे भी दूर नहीं हो रहा है; केवलमात्र वैष्णवोंके आदेश और शास्त्रीय वाणीकी मर्यादाके लिये ही मुखसे कुछ न कहनेपर भी हमारे चित्तमें प्राकृत भावना ही जाग्रत रहती है। मठाश्रित वैष्णवगण और उपस्थित सज्जनो! आपलोग मेरी इस बातसे असन्तुष्ट मत होना। चित्तमें इस प्रकारकी भावना मेरे समान दुर्दैवग्रस्त जीवके लिए असम्भव नहीं हैं। अनेक दिनोंतक अपने चित्तमें ऐसी भावनाओंके विद्यमान रहनेके कारण ही आज मैं श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी इस शुभ आविर्भाव–तिथिपर भी तिरोभाव–तत्त्वकी आलोचना कर रहा हूँ। वैष्णवोंमें देह–देहीका भेद नहीं होता, जिन्हें इस विषयमें सन्देह है, मैं एक उदाहरणके द्वारा उनके इस सन्देहको दूर करनेका प्रयास करूँगा। श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने अपनी उसी

देहको लेकर ही औदार्यमय नित्यधाममें प्रयाण किया है, यह समझानेका प्रयास करूँगा।

आप सभीने सुना है कि यह जगत परजगतकी छाया है। कोई व्यक्ति किसीकी छायासे, उस (व्यक्ति या वस्तु) के सम्बन्धमें सम्पूर्ण–भावसे, सुष्ठुरूपमें, सर्वाङ्ग–सुन्दरभावसे नहीं जान सकता। किन्तु छायाके द्वारा हम यह जान सकते हैं कि यह किस वस्तुकी छाया है। जैसे वृक्षकी छायाको देखनेपर हम यह समझ सकते हैं कि यह एक वृक्षकी छाया है। किन्तु किस वृक्षकी छाया है, आम अथवा लीची, यह केवल छाया देखनेसे ही नहीं जाना जा सकता। फिर भी, यह छाया किसी हाथी या पहाड़–पर्वतकी नहीं है, यह एक वृक्षकी ही छाया है, इसकी उपलब्धि की जा सकती है। मनुष्यकी छाया देखकर हम यह समझ सकते हैं कि यह एक मनुष्यकी छाया है, किसी पशुकी नहीं। तथापि यह समझना कठिन है कि यह 'राम' नामक व्यक्तिकी छाया है अथवा 'यदु' नामक व्यक्तिकी। उसी प्रकार यह जगत् अप्राकृत जगत्‌की छाया होनेके कारण हम सम्पूर्ण रूपसे न सही, किन्तु कुछ अंशमें तो अप्राकृत जगतकी धारणा तो कर सकते हैं। इसलिये मैं अप्राकृत जगतकी छायास्वरूप प्राकृत जगतका एक उदाहरण लेकर किसी अप्राकृत तत्त्वकी धारणा प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। उदाहरण सर्वाङ्ग–सुन्दर न होनेपर भी इसकी तुलनामें श्रेष्ठ उदाहरण मेरे क्षुद्रज्ञानमें न रहनेके कारण एवं यही आपलोगोंके सन्देहको दूर करनेमें सत्युक्ति होगी—ऐसा विचारकर इस प्रकारका उदाहरण आपलोगोंके समक्ष निवेदन कर रहा हूँ—

आपलोगोंने देखा है कि साँप अपनी खाल छोड़कर स्व–स्वरूप (अर्थात् अपने उसी सर्प स्वरूप) में विचरण करता है। खालको देखकर हम अधिकांशत यह समझ सकते हैं कि यह

जिस प्रकार साँप अपनी सम्पूर्ण देहको लेकर, केवलमात्र (देहके आकारकी) खाल छोड़कर चला जाता है—छिन्न वस्त्रमात्रका त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करके नहीं जाता, उसी प्रकार श्रील ठाकुर भी अपनी औदार्यमय महावदान्य देहको लेकर अप्राकृत चिन्मय धाममें अवस्थान कर रहे हैं। उन्होंने छिन्न वस्त्र परित्याग करनेकी भाँति अपनी देह परित्याग करके नूतन देह ग्रहण नहीं की है।

किसी साँपकी खाल है तथा खालकी आकृति साँपके पूर्ण आकारके ही समान है, अतः इस खालका सम्पूर्ण रूपसे त्याग करके भी साँप अपनी सोलह–आना (सम्पूर्ण) देहको लेकर अन्यत्र चला गया।

इस प्रसङ्गमें दूसरी ओर गीताका एक श्लोक मुझे स्मरण हो रहा है। आपलोग जानते हैं–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि
अन्यानि संयाति नवानि देही॥

(श्रीगीता २/२२)

[अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य जीर्णवस्त्रोंका परित्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार देही आत्मा भी जीर्ण–शरीरका परित्यागकर नूतन देह धारण करता है।]

इस श्लोकके साथ मेरे वक्तव्य विषयको एक मत करना। इसका कारण है कि यह श्लोक बद्धजीवके पक्षमें ही उपयुक्त है। नित्यमुक्त महापुरुषोंमें देह–देहीका भेद न होनेके कारण उनके प्रति गीताका यह श्लोक apply करनेपर हमारा अपराध होगा। कारण, वस्त्र या पोषाकके साथ हमारा विशेष पार्थक्य है। वस्त्र, जिस जातिकी वस्तु हैं, जिस उपादानसे गठित हैं, हम वह जातीय वस्तु नहीं हैं; अथवा हमारा गठनगत उपादान भी सम्पूर्ण रूपसे पृथक है। इसीलिये हमारे पक्षमें गीताका यह श्लोक उपयुक्त है, किन्तु नित्यमुक्त वैष्णवोंके पक्षमें यह प्रयोग नहीं हो सकता है, क्योंकि वैष्णवोंके लिए देहका उपादान और देहीका उपादान वस्तुतः एक ही है। अतः एक देहको त्यागकर अन्य देहको धारण करनेवाला परिवर्त्तनशील धर्म या क्रिया नित्य और अप्राकृत क्रिया नहीं है। अब आपलोग सर्पके उदाहरण और गीताके जीर्ण–वस्त्र त्यागके उदाहरणके विषयमें विशेषरूपसे विचारकर उनमें पार्थक्यकी उपलब्धि कीजिये।

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद अप्रकटकालमें अपनी पूर्ण चिदानन्दमय देहको लेकर ही अप्राकृत धाम चले गये हैं। जिस प्रकार साँप अपनी सम्पूर्ण देहको लेकर, केवलमात्र (देहके आकारकी) खाल छोड़कर चला जाता है–छिन्न वस्त्रमात्रका त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करके नहीं जाता, उसी प्रकार श्रील ठाकुर भी अपनी औदार्यमय महावदान्य देहको लेकर अप्राकृत चिन्मय धाममें अवस्थान कर रहे हैं। उन्होंने छिन्न वस्त्र परित्याग करनेकी भाँति अपनी देह परित्याग करके नूतन देह ग्रहण नहीं की है। हम इस अविद्याहरण नाट्यमन्दिरमें श्रील ठाकुरकी प्रकट और अप्रकट–लीलाके विग्रह–आलेख्यका, जो कि अर्चारूपमें सुसज्जित है, दर्शन कर रहे हैं। जो आलेख्य–मूर्त्ति हमारे सामने अर्चा–रूपमें प्रतिष्ठित है, यही श्रीमूर्त्ति ही अप्राकृत मूर्त्ति, अपरिवर्त्तनशील–मूर्त्ति, नित्यमूर्त्ति, प्रकट और अप्रकटलीलाकी मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति नित्य नहीं होती, तो हम उनकी नित्यमूर्त्तिका अनुसन्धानकर उसका ही अर्चन करते। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके समाधि–क्षेत्रमें यही मूर्त्ति ही प्रतिष्ठित है। यह श्रीमूर्त्ति कभी भी अनित्य और प्राकृत नहीं है। हमारे आचार्यदेव (श्रील प्रभुपाद) का ऐसा कोई आदेश हमने आजतक नहीं सुना कि हमें किसी अनित्य, प्राकृत वस्तुकी उपासना करनी चाहिये अथवा प्राकृत वस्तुमें अप्राकृतका आरोपकर उसकी पूजा करनी होगी। अतः आपलोग निःसन्देह अविचलित चित्तसे मेरे उदाहरणके उद्देश्यमात्रको लक्ष्य करके सब प्रकारसे विवेचना करके देखिये–श्रील ठाकुर भक्तिविनोदमें देह और देहीका भेद नहीं है एवं वे नित्य, अप्राकृत और सनातन हैं।

हम दुर्दैववशतः अब श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका प्रत्यक्ष–भावसे दर्शन न कर पानेपर भी उनके सङ्गसे विच्युत न हों। बाल्यकालमें छात्रावस्थामें हमने योगेन्द्रनाथ वसु महाशयके द्वारा लिखित एक ग्रन्थमें पढ़ा था कि 'ग्रन्थ ही ग्रन्थकारकी जीवनी है'। अतएव श्रील ठाकुर महाशय वर्त्तमानमें हमारे जड़–नेत्रोंसे दूर रहनेपर भी हम उनकी ग्रन्थराजिसे उनकी जीवनी संग्रहकर उनके जीवन्त जीवनका सङ्ग प्राप्त करनेकी चेष्टा करेंगे।

(दैनिक नदीया प्रकाश वर्ष–९, संख्या–१८० से अनुवादित)

आविर्भाव-शक्तिके द्वारा जगतमें तिरोभाव-शक्तिके द्वारा प्रकट-

(साप्ताहिक गौड़ीय खण्ड—६, संख्या—४२ से अनुवादित)

प्रकटन एवं प्रकाशसे अन्तर्धान

[यदि प्रश्न हो कि देखा जाता है—श्रीगुरु और वैष्णव साधारण जीवकी भाँति किसी-न-किसी रोगसे ग्रस्त होकर ही देह त्याग करते हैं? क्या वे माया शक्तिके द्वारा मृत्यु प्राप्त कर शरीर त्यागते हैं या स्वशरीर अपने धाम जाते हैं? इसका कोई प्रमाण है?

इसके उत्तरमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके अप्रकट होनेके प्रसंगमें श्रीकृष्णका भी प्रमाण देते हुए वैष्णव आचार्यवृन्द यही सिद्धान्त देते हैं कि श्रीभगवान् एवं उनके परिकरोंके द्वारा अपना शरीर छोड़कर या मरा हुआ दिखलाकर जाना एक जादूगरकी मृत्युके समान मिथ्या है और यही सत्य है कि वे आविर्भाव शक्तिके द्वारा इस जगत्में प्रकटित होते हैं और तिरोभाव शक्तिके द्वारा अपने नित्य स्वशरीरसे पुनः अप्रकटित हो जाते हैं।]

प्रश्न—श्रीश्रीमन्महाप्रभुके अप्रकटके विषयमें अनेक लोग अनेक प्रकारके मत प्रकाश करते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्यभागवतमें इस विषयमें कोई उल्लेख नहीं है। वे किस प्रकार अप्रकट हुए? आप वैष्णव धर्मके प्रचार और यथार्थताको निर्णय करनेमें समर्थ हैं। अतः आपसे इस प्रश्नका प्रमाण-सहित वास्तव उत्तर प्राप्त करनेकी आशा करते हैं।

उत्तर—श्रीचैतन्य-भागवत, श्रीचैतन्य-चरितामृत, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय आदि ग्रन्थ ही श्रीमन्महाप्रभुके चरित्रके सम्बन्धमें प्रामाणिक और सुप्राचीन ग्रन्थ हैं। सभीके द्वारा मान्य इन ग्रन्थोंमें जिस विषयका उल्लेख नहीं है, उसके तात्पर्यको नहीं मानकर परवर्तीकालमें लिखित अप्रमाणिक (जाली) पुस्तकोंके प्रमाण या अनुमान और कल्पनाके बलसे उदित विभिन्न मतामत कभी भी 'प्रामाणिक' कहकर स्वीकार नहीं किये जा सकते। कुछ आधुनिक अप्रामाणिक-पुस्तकोंमें श्रीकृष्णकी असुर-विमोहन अन्तर्धान-लीलाके वर्णनका अनुकरणकर महाप्रभुके अन्तर्धानके कारणोंकी रचना

की गयी है। किञ्चित धीर–भावसे विचार करनेपर इस अवैध अनुकरण कार्यको जाना जा सकता है।

मनोधर्मी अपराधियोंका विचार यह है कि यदि श्रीकृष्णकी असुरविमोहन अन्तर्धान–लीलाके वर्णनका अनुकरणकर महाप्रभुके अन्तर्धानके विषयमें कोई कारण प्रस्तुत किया जाये, तो ऐसा होनेपर ही महाप्रभुको 'कृष्ण' कहकर प्रतिपन्न करना एवं उनकी महिमाकी वृद्धि सहजरूपसे की जा सकती है। इस प्रकारके अपराधमय मनोधर्मसे उत्पन्न चिन्तास्त्रोतसे ही महाप्रभुकी अन्तर्धान–लीलाके सम्बन्धमें नाना–प्रकारकी काल्पनिक कथाएँ रचित हुई हैं एवं उन्हें ही परवर्तीकालमें जाली–पुँथियों (अप्रमाणिक–पुस्तकों) में प्रविष्ट कराया गया है।

हम छान्दोग्य–उपनिषद्के ७म प्रपाठकके, २६वें खण्डकी १म संख्यामें परब्रह्मकी आविर्भाव और तिरोभाव शक्ति (**'आत्मत आविर्भावतिरोभावौ'**) नामक दो स्वरूपानुबन्धिनी शक्तियोंकी कथा देखते हैं। श्रीचैतन्य–भागवतके रचियता श्रील वृन्दावन दास ठाकुरने भी श्रीमन्महाप्रभुकी लीला–वर्णनमें उन दो शक्तियोंका ही उल्लेख करते हुए लिखा है—

एई सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद।
'आविर्भाव' 'तिरोभाव' एइ कहे वेद॥

(श्रीचैतन्यभागवत आदि ३/५२)

[अर्थात् इन लीलाओंका कभी परिच्छेद (अर्थात् विभाजन) नहीं होता। इसे वेदमें 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' के नामसे कहा गया है।]

श्रीगौरसुन्दर स्वयंरूप परतत्त्व हैं, वे सर्वशक्तिमान हैं। अपनी स्वरूपानुबन्धिनी **आविर्भाव–शक्ति**के द्वारा वे जगतमें प्रकटित हुए थे एवं पुनः अपनी **तिरोभाव–शक्ति**के द्वारा वे प्रकट–प्रकाशसे अन्तर्हित हुए थे। अतएव महाप्रभु किस प्रकार–अप्रकट हुए थे? इस प्रश्नका उत्तर प्रमाण–शिरोमणि श्रुतियोंने ही प्रदान किया है। परवर्त्तीकालमें भ्रान्त होकर कर्मफल–बाध्य जीव अपने–अपने शरीरको 'अप्राकृत' मानने लगेंगे—इसे निषेध करनेके उद्देश्यसे लोक–शिक्षाके लिए एवं प्राकृत सहजियागणोंके मुक्ताभिमानको निरस्त करनेके लिये श्रीमन्महाप्रभुने स्वयं अपनी देहमें ज्वरका प्राकट्य–विधान किया था। वास्तवमें महाप्रभुके नित्य–कलेवरमें कर्मफलबाध्य शरीरके समान ज्वर आदि रोगका उद्गम नहीं हो सकता। **महाप्रभुकी ज्वर–लीला मूढ़–व्यक्तियोंको वञ्चित करनेके लिये ही है।**

श्रील सनातन–शिक्षाके छलसे श्रीमन्महाप्रभुने श्रीकृष्ण–अन्तर्धान–लीलाका वास्तविक तात्पर्य हमें बतलाया है; यथा—

मौषल–लीला आर कृष्ण–अन्तर्धान।
केशावतार आर विरुद्ध व्याख्यान्॥
महिषी हरण आदि सब मायामय।
व्याख्या शिखाइल यैछे सुसिद्धान्त हय॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य २३/१०९, १११–११२)

[अर्थात् 'मौषल–लीला', श्रीकृष्ण–अन्तर्धान, केशावतार और 'महिषी हरण' आदिकी जो विरुद्ध व्याख्या है, वह सब मायामय है। श्रीमन्महाप्रभुने श्रील सनातन गोस्वामीपादको इन सब लीलाओंकी सुसिद्धान्त पूर्वक व्याख्या सिखायी।]

अतः स्वयं महाप्रभुके वाक्योंसे भी हम उनकी अप्रकटलीलाके तात्पर्यको जान सकते हैं। महाप्रभुने श्रीलसनातन गोस्वामीको शिक्षा देनेके छलसे बतलाया कि निरङ्कुश स्वेछामय भगवान्‌की अप्रकट लीला–प्रकाशका कोई कारण नहीं है; वह उनकी ही तिरोभाव–शक्तिके द्वारा आविष्कृत है।

श्रीमद्भागवतके (१/१५/३५) वें श्लोककी सारार्थदर्शिनी–टीकामें श्रीलचक्रवर्ती–ठाकुरने श्रीकृष्णकी अन्तर्धान–लीलाके प्रकारका अति विस्तृत–भावसे वर्णन किया है—*'यथा नटः एन्द्रिजालिकः छेद–दाह–मूर्च्छादिभिः स्वदेहं त्यजति, तस्य त्यागं सर्वान् दर्शयति, प्रत्याययति च, अथच स्वदेहं धत्ते एव न तु म्रियते, तथैव मत्स्यादि–रूपाणि मत्स्यादि–शरीराणि स्वीयानि भगवान् धत्ते जह्यात्; दधान एव जहाति। तेन नटस्य स्वशरीरधारणं सत्यमेव तत्त्यागस्तु*

मिथ्यैव यथा, तथैव भगवतोऽपि मत्स्यादिस्वीयशरीरधारणं सत्यमेव, तत्तत्यागो मिथ्यैवेत्यर्थः। यथाच मत्स्यादिशरीराणि दधान एव जहाति, तथैव 'येन भूभारः क्षपितस्तच्च कलेवरं जहौ' इति श्रीकृष्णकलेवरत्यागो मिथ्यैवेति। नराकृतिपरब्रह्मत्वादिकमपि नटरूपनरधर्ममेवं भगवान् करोति, न तु तत्त्वेन। स्वदेहस्याभौतिकत्वेन नाशासम्भवात्। यदुक्तं महाभारते—'न भूतसंघसंस्थानो देहोऽस्य परमात्मन' इति। बृहद्वैष्णवेऽपि—'यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः। स सर्वस्माद्बहिःकार्यः श्रौत स्मार्त्तविधानतः। मुखं तस्यावलोक्यापि सचेलः स्नानमाचरेदिति।'

इसका तात्पर्य यह है कि कोई जादूगर जिस प्रकार छेदन, दहन और मूर्च्छा आदि द्वारा अपने देहका त्याग करता है एवं अपना देह–त्याग सभीको दिखलाता है तथा दर्शकोंमें ऐसा ही विश्वास उत्पन्न करा देता है, किन्तु वास्तवमें वह अपने देहको धारण किया हुआ ही रहता है, मरता नहीं। उसी प्रकार श्रीभगवान् मत्स्यादि रूपोंके मत्स्यादि अपने शरीरको ही धारण करते हैं एवं परित्याग करते हैं अर्थात् धारण की हुई अवस्थामें ही परित्याग करते हैं। इसका यह अर्थ है कि जिस प्रकार जादूगरका अपना शरीर धारण किए रहना ही सत्य है, किन्तु उसका त्याग मिथ्या है, उसी प्रकार भगवान्‌का भी मत्स्यादि अपने शरीरोंका धारण किए रहना ही सत्य है, किन्तु उन–उन शरीरोंका त्याग मिथ्या है। उसी प्रकार श्रीकृष्णका कलेवर त्याग मिथ्या ही है। नराकृति परब्रह्मत्व आदि होनेपर भी भगवान् जादूगररूपी मनुष्यधर्मको ही अङ्गीकार करते हैं, किन्तु तत्त्वतः नहीं। श्रीभगवान्‌का अपना श्रीविग्रह अभौतिक होनेके कारण उसका नाश असम्भव है।

श्रीमन्मध्वाचार्यपाद श्रीमद्भागवतम् (३/४/२९) के स्वलिखित श्रीभागवत–तात्पर्यमें स्कन्दपुराणके वचनको उद्धृतकर कहें हैं—

> **'पृथिवीलोकसंत्यागो देहत्यागो हरेः स्मृतः।**
> **नित्यानन्द–स्वरूपत्वादन्यन्नैवोपलभ्यते॥**
> **दर्शयेज्जनमोहाय सदृशीं मृतकाकृतिम्।**
> **नटवद्भगवान् विष्णुः परज्ञानाकृतिः स्वयम्॥'**

अर्थात् 'श्रीहरिका देहत्याग'—ऐसा कहनेपर उनकी प्रञ्चलीलाके सङ्गोपनको समझना होगा, क्योंकि भगवान् नित्यानन्द–स्वरूप हैं। उनकी देहत्यागका अर्थ है, उनका प्रपञ्चत्याग करना, इसके अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ ग्रहण ही नहीं किया जा सकता। भगवान् विष्णु प्रकृतिसे अतीत

परज्ञानमय विग्रह हैं। वे विमुखजनोंको मोहित करनेके लिये जादूगरके समान देहत्याग आदिका अभिनय प्रदर्शित करते हैं।

श्रील जीव गोस्वामिपादने कृष्णसन्दर्भके १०६वें अनुच्छेदमें अनेक शास्त्र वचनोंका उल्लेख और विचार प्रदर्शन करते हुए कहा है कि भगवान्‌का देह पाञ्चभौतिक देह नहीं है तथा उसमें षड्‌विकार भी नहीं हैं। जरा–व्याधि आदिके द्वारा भगवान् प्रभावित नहीं हो सकते एवं प्राकृत लोगोंके समान पञ्चभूतत्त्वको भी प्राप्त नहीं होते।

अतः महाप्रभुकी अप्रकट लीला किस कारण हुई थी—इसके कारणका निर्देश करते समय इतना ही कहना होगा कि, परम–स्वतन्त्र भगवान्‌की आज्ञानुसार उनकी अधीन अन्तर्धान–शक्तिने प्रभुकी अप्रकट–लीलाका आविष्कार किया था; इसके अतिरिक्त अन्य कोई कारण निर्देश नहीं किया जा सकता। अन्यान्य काल्पनिक विचार आदि इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञानसे होनेके कारण निरर्थकमात्र हैं।

सच्चिदानन्द–विग्रह श्रीभगवान् किसी प्राकृतिक–कारणवशतः जगत्‌से अन्तर्धान नहीं हो सकते। इस विषयमें सात्वत शास्त्रकारोंने अनेक युक्तियाँ प्रदर्शित की हैं। श्रीमध्व–सम्प्रदायके प्रधान–आचार्य श्रीवादिराज–स्वामीने अपने ''युक्ति–मल्लिका'' ग्रन्थमें अनेक युक्तियोंके द्वारा अक्षज–वादियोंके मतको परास्त किया है। हम विस्तारके भयसे युक्तिमल्लिकाके संस्कृत श्लोकोंका उल्लेख न करके संक्षेपमें केवलमात्र उनके कुछ अनुवादको प्रस्तुत करे रहे हैं—

"यदि जरा नामक बहेलियाके अस्त्राघातसे वास्तवमें ही श्रीकृष्णकी मृत्यु होती, तो ऐसा होनेपर उसी समय उनके उदरमें स्थित जगतकी भी मृत्यु हुई होती, क्योंकि श्रीकृष्णके उदरमें ब्रह्माण्डकी स्थिति उक्त है।

यदि वास्तवमें ही कृष्णका विनाश होता है, तो ऐसा होनेपर उनके स्वर्गारोहणके समय जगतमें प्रलय उपस्थित हो सकती थी एवं अवतारके समयमें जगतकी सृष्टि हो सकती थी।

अल्प तपोबलसे सम्पन्न एवं अतृप्त दर्शनाभिलाषासे युक्त लोगोंके निकट भगवानने अपना विग्रह प्रदर्शनकर पुनः उसे सङ्गोपन कर लिया।

इस लोकमें पिशाच द्वारा आविष्ट देह तलवारके द्वारा छिन्न हो, ऐसा नहीं देखा जाता, इसी प्रकार किसी स्थानपर मन्त्रके द्वारा तलवारकी तीक्ष्णता स्तब्ध करनेपर उक्त तलवारके द्वारा कोई वस्तु छिन्न नहीं होती। अतएव सर्वशक्तिमान श्रीकृष्णकी देह छिन्न हुई थी—ऐसा कहनेपर पिशाचकी अपेक्षामें श्रीकृष्णकी शक्तिकी अल्पता प्रमाणित हो जायेगी एवं सर्ववेदमन्त्रोंसे अभिज्ञ भगवान्‌की सर्वज्ञता शक्तिका लोप–प्रसङ्ग भी घटित होता।

ब्रह्माण्डका आवरण–भेदनेके समय जिनका नखमात्र भी छिन्न नहीं हुआ, व्याधके बाणाघात मात्रसे उनका शरीर–छेदन किस प्रकार सम्भव हो सकता है?

विष्णुके रोम–कूपमें अनन्त ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, अतएव उनके रोमछेद मात्रसे ही जगतमें भी छेद हो सकता है। '*न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चनारे*' इस श्रुतिके द्वारा छेदन–भेदन आदि समस्त क्रिया विषयोंमें भगवान ही नियामक हैं, यह अवगत होता है; अतएव अन्य कोई किस प्रकार ऐसे पुरुषवरका छेदक हो सकता है?

दक्षके यज्ञमें विष्णुके उद्देश्यसे आहुति प्रदत्त होनेसे पहले ही रुद्रके द्वारा सतीके देह त्यागसे क्रुद्ध होकर दक्षका सिर छेदन करनेमें प्रवृत्त होनेपर जिन्होंने अपनी आहुतिके विलोप होनेकी आशङ्कासे दक्षका मस्तक रुद्रके लिये भी अच्छेद्य कर दिया था, ऐसे विष्णुका छेदन कौन कर सकता है?

रुद्र दक्षके वक्षःस्थलपर आक्रमणपूर्वक तीक्ष्णधार आयुधके द्वारा आघात करके भी दक्षका सिर छेदन नहीं कर पाये। शस्त्र और अस्त्र प्रहार करनेपर भी दक्षकी त्वचामात्रका भी छेदन करनेमें असमर्थ होकर रुद्रने विस्मयके आवेशमें दीर्घकालतक दिव्य–दृष्टिके साथ ध्यान किया। दक्षका सिर छेदन होनेपर विष्णुकी आहुतिका लोप होगा, अतः उसका सिर छेदन करना विष्णुका अभिमत नहीं है, पशुपति रुद्र ऐसा निश्चयकर ''मैं स्वयं ही दक्षको

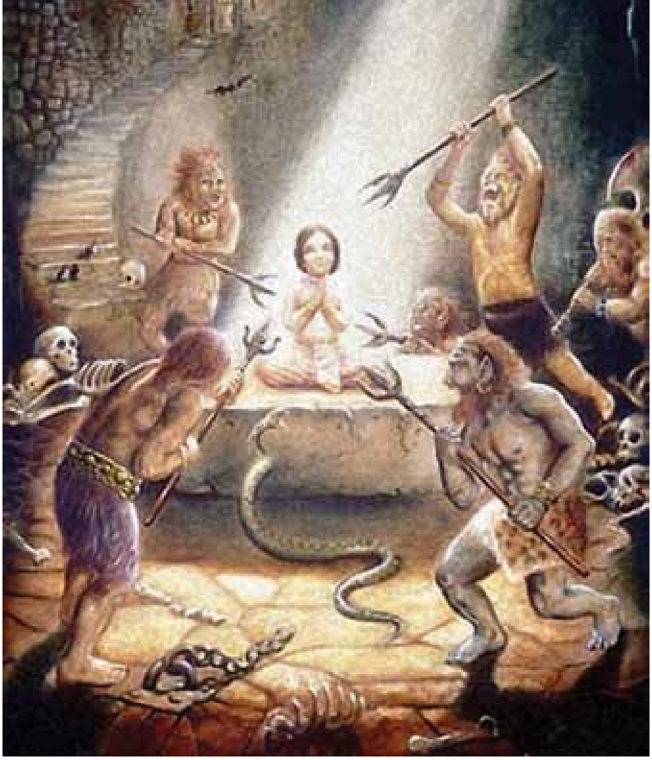

हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण अस्त्र–शस्त्रके द्वारा छेदन करनेमें निपुण होनेपर भी भगवत्–कृपा–बलसे रक्षित प्रह्लादका छेदन करनेमें समर्थ नहीं हो सके, अतएव जो कृपामात्रसे ही भक्तजनोंका छेदन निवारण करते हैं, वे स्वयं किस प्रकार छिन्न हो सकते हैं?

विष्णुकी आहुतिके लिये पशुरूपमें परिणत करूँगा—इस उपायका निर्णय करनेके पश्चात् ही दक्षका सिर छेदन कर सके थे।

इन समस्त भागवत वचनोंसे जाना जाता है कि भगवान् सङ्कल्पके द्वारा अन्य वस्तुको भी अच्छेद्य कर सकते हैं। अतएव स्वयं उनका छेदन किस प्रकार सम्भव हो सकता है?

हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण अस्त्र–शस्त्रके द्वारा छेदन करनेमें निपुण होनेपर भी भगवत्–कृपा–बलसे रक्षित प्रह्लादका छेदन करनेमें समर्थ नहीं हो सके, अतएव जो कृपामात्रसे ही भक्तजनोंका छेदन निवारण करते हैं, वे स्वयं किस प्रकार छिन्न हो सकते हैं?

श्रीकृष्णके द्वारा कौरव और पाण्डवपक्षमें सन्धि स्थापित करनेके लिये हस्तिनापुर गमन करनेपर कौरव लोग पाशके द्वारा श्रीकृष्णका बन्धन नहीं कर सके। अतएव उनके छेदनमें कौन समर्थ हो सकता है?

इन्द्रजितने युद्धकालमें नागपाशके द्वारा श्रीरामचन्द्रका देहच्छेद किया था। भगवान्‌की ऐसी लीला केवलमात्र लोकानुकरण एवं लोक–मोहनके लिये ही हुई थी; जिन्होंने इन्द्रजितके शस्त्राघातसे मृत वानरोंको अपनी अमृत–दृष्टिके द्वारा पुनर्जीवित किया था, ऐसे भगवान् श्रीरामका छेदन किस प्रकार हो सकता है?

नट पुरुष नारीवेश धारणकर रङ्गस्थलमें रोदन करता है, दर्शकोंके द्वारा उसका नारी एवं दुःखग्रस्तके रूपमें दर्शन करनेपर भी वस्तुतः वह नारी या दुःखी नहीं होता। इसी प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र इस जगतमें मूर्ख–लोगोंको अस्त्रके द्वारा छिन्न एवं दुःखीरूपमें दिखलायी देने पर भी वस्तुतः वे ऐसे नहीं हैं।"

अतएव अनुमान, कल्पना वा मनोधर्मी–पुरुषोंके अपराधमय चिन्तास्रोतके द्वारा रचित जाली (अप्रमाणिक) पुस्तकोंके असत् सिद्धान्त ग्रहण न करके श्रीमन्महाप्रभुकी अन्तर्धान–लीलाके सम्बन्धमें हमारी प्रमाण शिरोमणी श्रुतियोंके सिद्धान्त ही ग्रहणीय हैं। श्रुतियाँ कहती हैं—**भगवान् अपनी आविर्भाव शक्तिके द्वारा जगतमें प्रकटित होते हैं एवं तिरोभाव शक्तिके द्वारा जगतसे अन्तर्हित होते हैं। अप्राकृत वस्तुके अन्तर्धानके सम्बन्धमें इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्राकृतिक कारण हो ही नहीं सकता।**

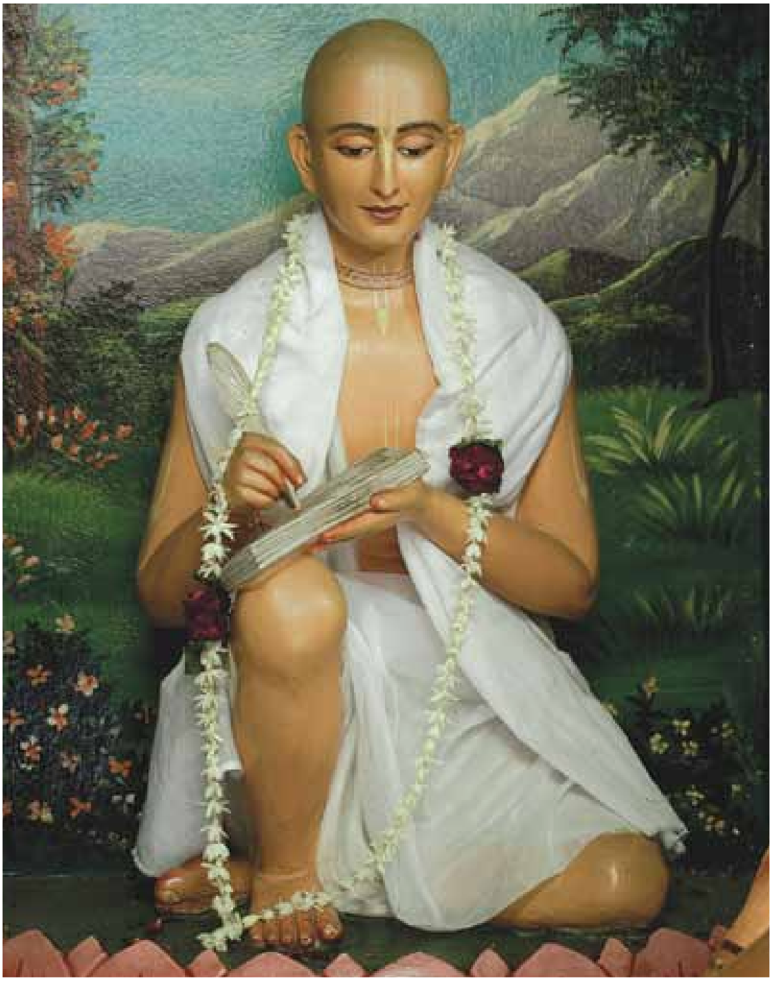

न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्द्धते॥
(श्रील रूप गोस्वामी, उज्जवलनीलमणि १५/३)

[यदि कहो कि सम्भोग ही सुखमय रस होनेके योग्य है, विप्रलम्भ किस प्रकार रस होने योग्य हो सकता है? इसके समाधानमें प्राचीन पण्डितोंका कहना है कि] विप्रलम्भ सम्भोगका पुष्टिकारक अर्थात् उन्नति विधायक है, विप्रलम्भके बिना सम्भोगकी पुष्टि नहीं होती। जैसे रङ्गे हुए वस्त्रको पुनः रङ्ग करनेसे वस्त्रके रङ्गमें अत्यधिक रूपसे वृद्धि होती है, उसी प्रकार विप्रलम्भके द्वारा ही सम्भोगकी उत्कर्षता होती है।

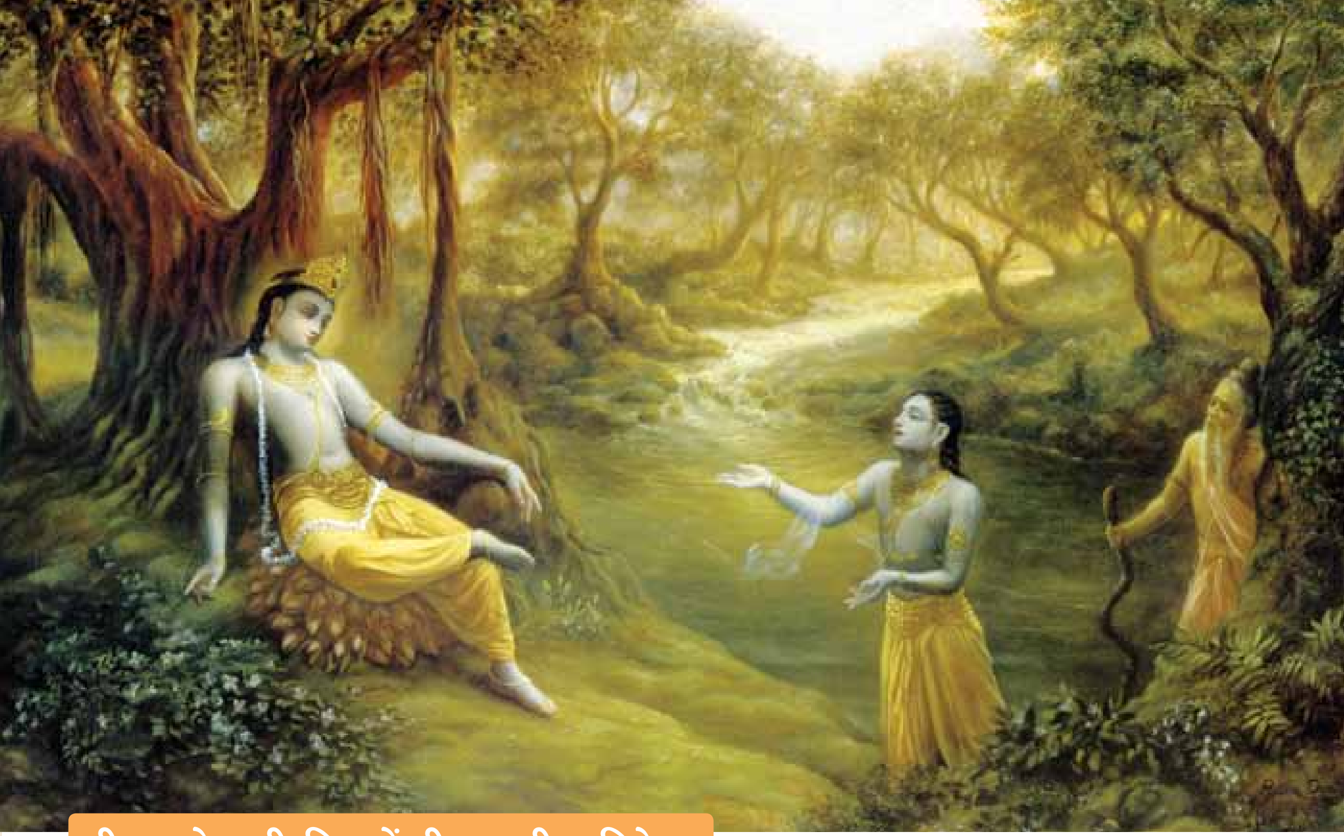

श्रीकृष्णके भावी-विरहमें श्रीउद्धवजीका निवेदन

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि॥

(श्रीमद्भा० ११/६/४३)

हे केशव! मैं एक क्षणके लिए भी आपके श्रीचरणकमलोंका परित्याग करनेमें समर्थ नहीं हूँ। अतएव हे नाथ! मुझे भी अपने साथ वैकुण्ठधाममें ले चलें।

भीष्म, द्रोणादि भक्त-राजाओंके विरहमें पाण्डवोंका विलाप

स्वजीवानाधिकप्रार्थ्यश्रीविष्णुजनसङ्गतेः।
विच्छेदेन क्षणञ्चात्र न सुखांशं लभामहे॥

(श्रीबृहद्भागवतामृतम् १/५/५४)

वास्तवमें भगवान् श्रीविष्णुके भक्तोंका संग हमें अपने जीवनसे भी अधिक अथवा प्राणोंसे भी अधिक प्रार्थनीय है, परन्तु अब उन्हीं भक्तोंके वियोगमें हम लोग इस संसारमें (इस राजपुरीमें) एक क्षणके लिए तनिक भी सुख प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

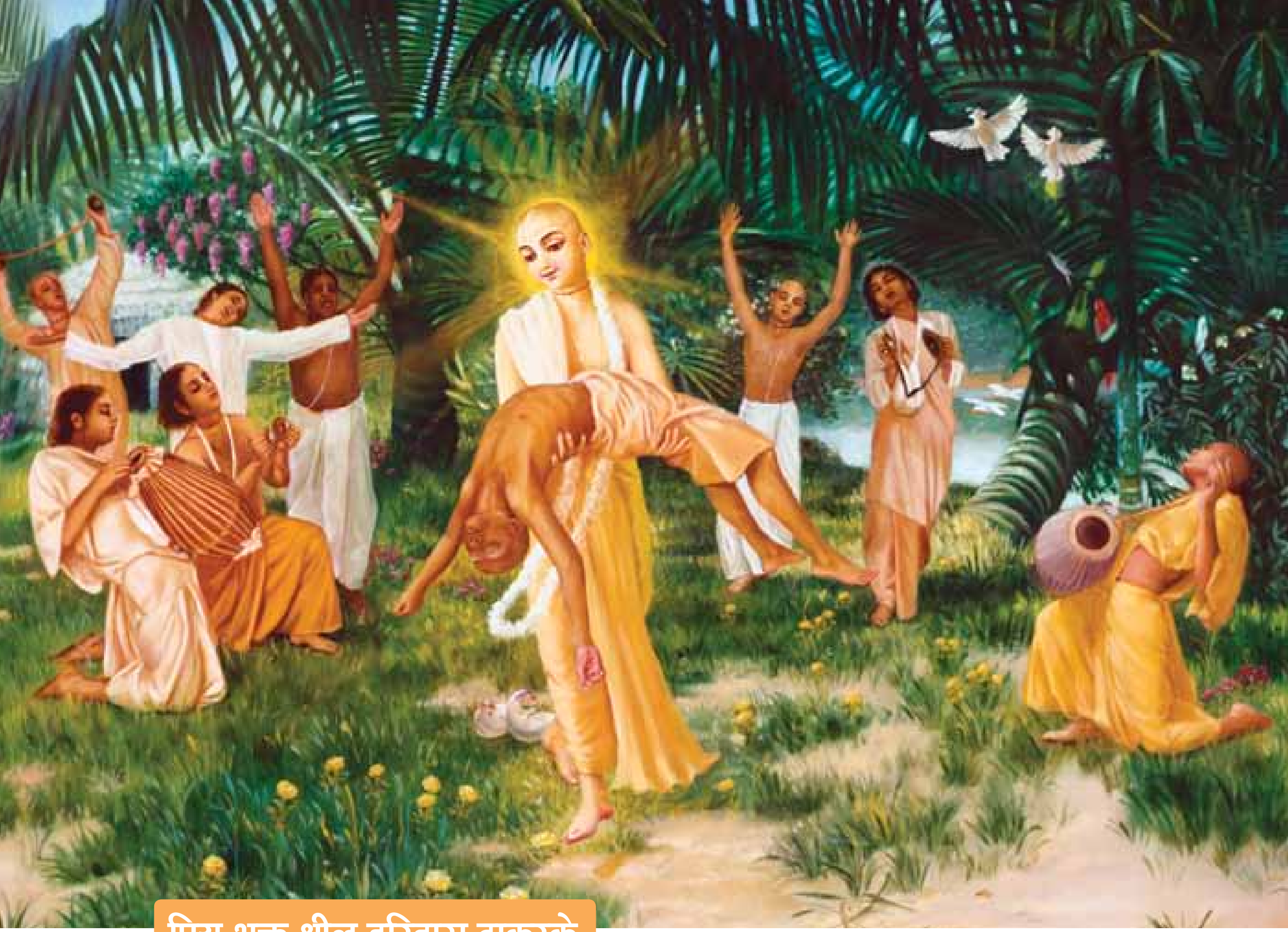

प्रिय भक्त श्रील हरिदास ठाकुरके विरहमें श्रीमन्महाप्रभुकी उक्ति

कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिला संग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा—कैला संग–भंग॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य ११/९४)

श्रीकृष्णने कृपा करके मुझे श्रीहरिदास ठाकुरका सङ्ग दिया था, किन्तु स्वतन्त्र श्रीकृष्णकी इच्छाके कारण उन्होंने आज उस सङ्गको छीन लिया है।

हरिदासेर इच्छा जबे हइल चलिते।
आमार शकति ताँर नारिल राखिते॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य ११/९५)

जब श्रील हरिदास ठाकुरकी चले जानेकी इच्छा हुई, तब उन्हें रोकनेके लिए मुझमें शक्ति नहीं रही।

हरिदास आछिल पृथिवीर 'शिरोमणि'।
ताहा बिना रत्न–शून्या हइल मेदिनी॥९७॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य ११/९७)

श्रील हरिदास ठाकुर पृथ्वीके 'शिरोमणि' थे। उनके बिना यह पृथ्वी 'रत्न'–शून्य हो गयी है।

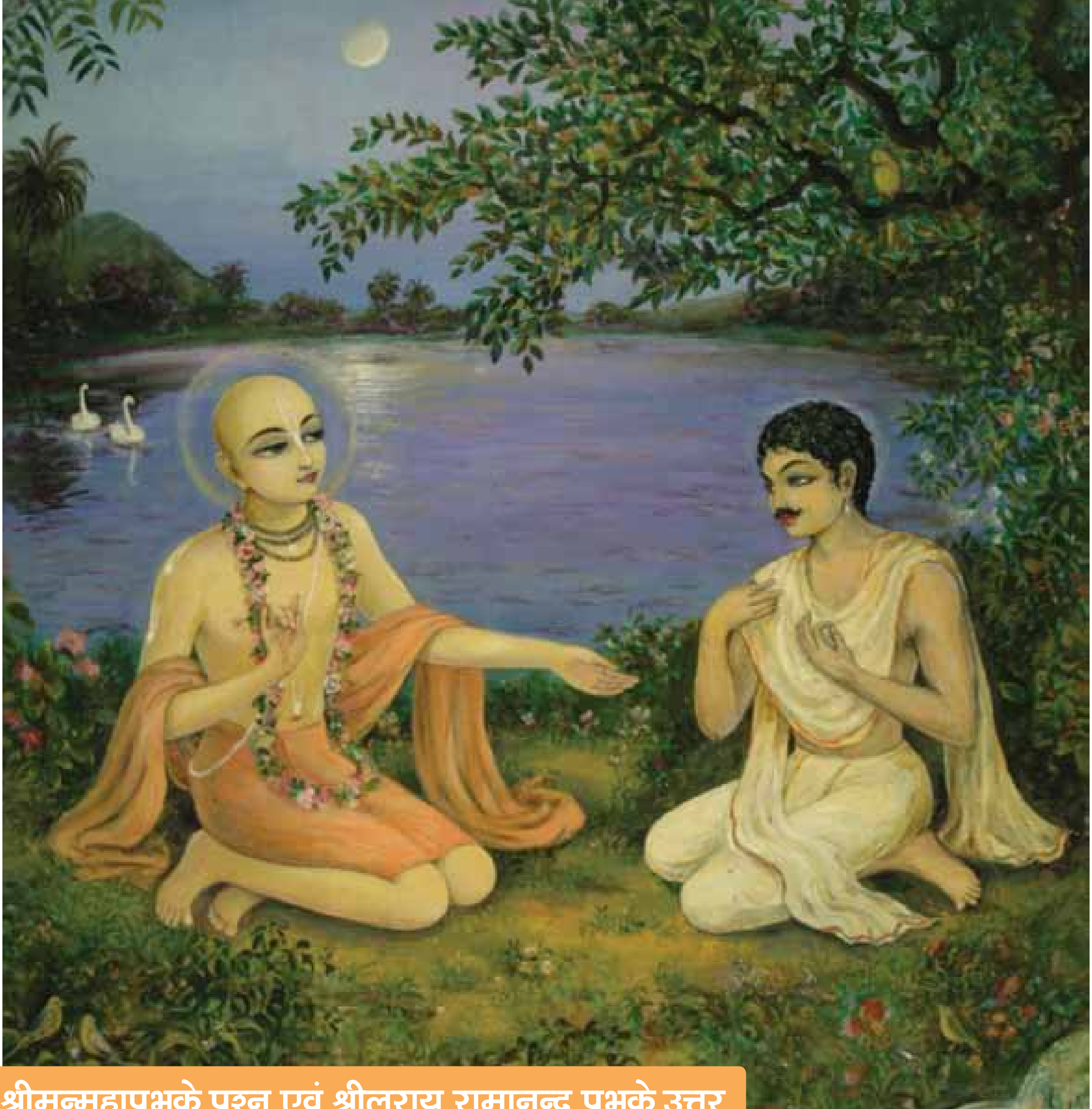

श्रीमन्महाप्रभुके प्रश्न एवं श्रीलराय रामानन्द प्रभुके उत्तर

दु:ख मध्ये कोन् दु:ख हय गुरुतर?
'कृष्णभक्त–विरह बिना दु:ख नाहि देखि पर॥'
(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ८/२४७)

श्रीमन्महाप्रभुने पूछा—दु:खोंमें सबसे बड़ा दु:ख कौन–सा है? श्रीरामानन्द रायने कहा—श्रीकृष्णके भक्तका वियोग ही सबसे बड़ा दु:ख है। इससे बढ़कर और कोई दु:ख नहीं है।

'श्रेयो–मध्ये कोन् श्रेय: जीवेर हय सार?'
'कृष्णभक्त–सङ्ग बिना श्रेय: नाहि आर॥'
(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ८/२५०)

श्रीमन्महाप्रभुने पूछा—मंगलोंमें–से कौन–सा मंगल जीवोंके लिए सार है? श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया—श्रीकृष्ण भक्तोंके सङ्गके समान और कोई श्रेष्ठ मंगल नहीं है।

श्रीमन्महाप्रभुके विरहमें श्रीलप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद

अभिव्यक्तो यत्र द्रुतकनकगौरा हरिरभू–
न्महिम्ना तस्यैव प्रणयरसमग्नं जगदभूत्।
अभूदुच्चैरुच्चैस्तुमुलहरिसंकीर्त्तनविधिः
स कालः किं भुयोऽप्यहह परिवर्त्तेत मधुरः॥

(श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम् १३९)

जिस समय गलित–कनक कान्ति गौरतनु श्रीहरि प्रपञ्चको गोचरीभूत हुए, उस समय उनके प्रभावसे पृथ्वी प्रणयरसमें मग्न हो गयी एवं उच्च स्वरमें तुमुल श्रीकृष्ण–संकीर्त्तन–प्रणाली भी प्रवर्त्तित हुई। हाय! वह मधुर समय क्या पुनः लौटकर आयेगा?

सैवेयं भुवि धन्यगोड़नगरी वेलापि सैवाम्बुधेः
सोऽयं श्रीपुरुषोत्तमो मधुपतेस्तान्येव नामानि तु।
नो कुत्रापि निरीक्ष्यते हरिहरि प्रेमोत्सवस्तादृशो
हा चैतन्य कृपानिधान तव किं वीक्ष्ये पुनर्वैभवम्॥

(श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम् १४०)

पृथ्वीमें यह वही धन्य गौड़ नगरी है, यह वही समुद्रके उपवनादियुक्त तीर हैं, यह वही श्रीपुरुषोत्तम धाम है, श्रीकृष्णके वही सब 'हरे कृष्ण' आदि नाम भी वर्तमान हैं, हरि! हरि! किन्तु, कहीं भी तो वैसे प्रेमानन्द–उत्सव दृश्य नहीं हो रहे हैं। हा चैतन्य! हा कृपानिधे! आपका वैभव पुनः क्या मेरे नयन गोचर होगा?

श्रीमन्महाप्रभुके विरहमें श्रीलरूप गोस्वामी

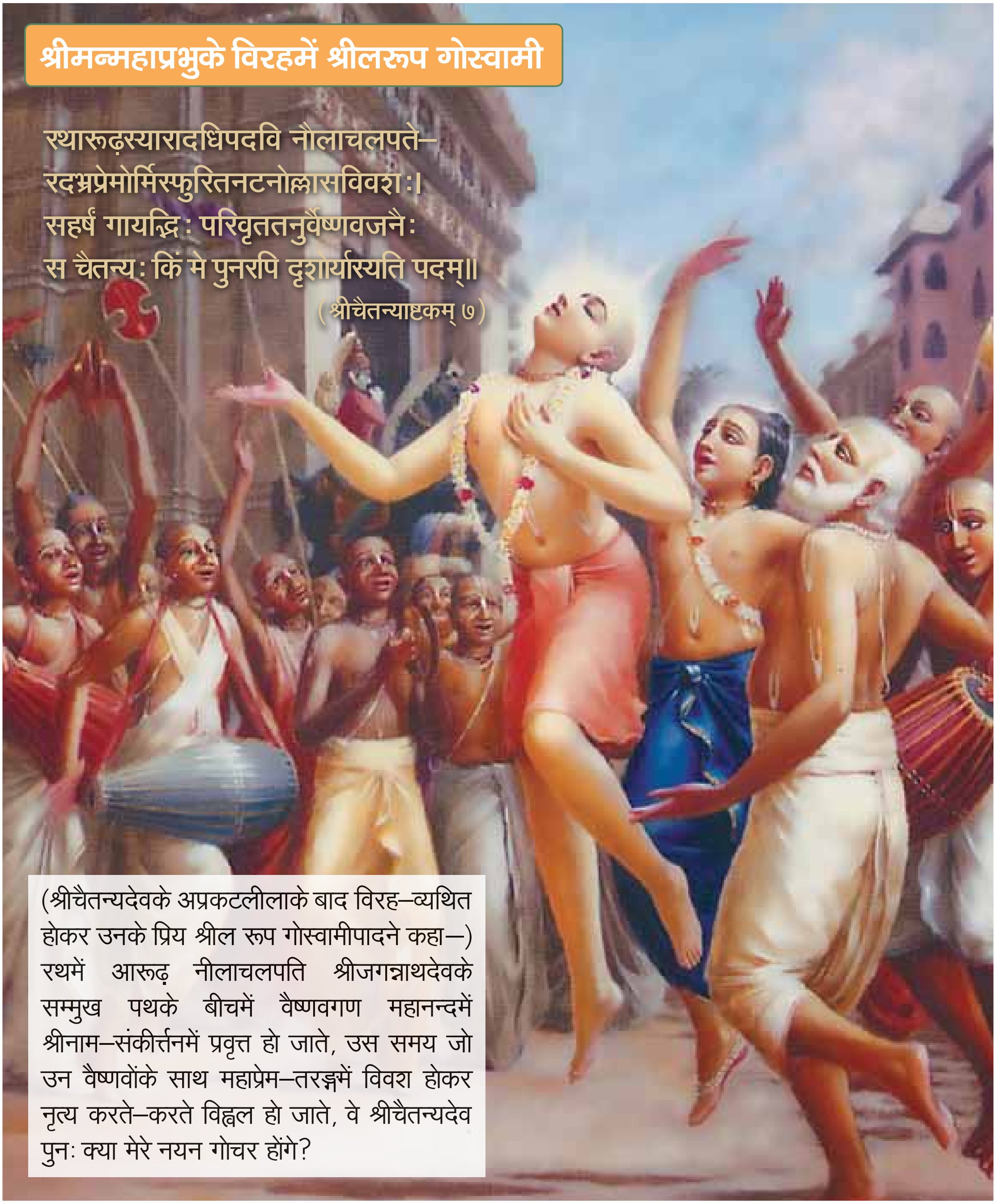

रथारूढ़स्यारादधिपदवि नौलाचलपते–
रदभ्रप्रेमोर्मिस्फुरितनटनोल्लासविवश:।
सहर्षं गायद्भि: परिवृततनुर्वैष्णवजनै:
स चैतन्य: किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्॥
(श्रीचैतन्याष्टकम् ७)

(श्रीचैतन्यदेवके अप्रकटलीलाके बाद विरह–व्यथित होकर उनके प्रिय श्रील रूप गोस्वामीपादने कहा—) रथमें आरूढ़ नीलाचलपति श्रीजगन्नाथदेवके सम्मुख पथके बीचमें वैष्णवगण महानन्दमें श्रीनाम–संकीर्त्तनमें प्रवृत्त हो जाते, उस समय जो उन वैष्णवोंके साथ महाप्रेम–तरङ्गमें विवश होकर नृत्य करते–करते विह्वल हो जाते, वे श्रीचैतन्यदेव पुनः क्या मेरे नयन गोचर होंगे?

श्रीश्रीराधाकृष्ण, श्रीमन्महाप्रभु और उनके परिकरोंके विरहमें श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी

राधाकृष्णेर वियोगे, छाड़िल सकल भोगे,
रुखा शुखा अन्नमात्र सार।
श्रीचैतन्येर विच्छेदेते, अन्न छाड़ि सेई हैते,
फल गव्य करेन आहार॥
सनातनेर अदर्शने, ताहा छाड़ि सेई दिने,
केवल करेन जलपान।
रूपेर विच्छेद जबे, जल छाड़ि दिल तबे,
राधाकृष्ण बलि राखे प्राण॥
स्वरूपेर अदर्शने, ना देखे रूपेर गणे,
विरहे व्याकुल हैया कान्दे।
कृष्णकथालाप बिने, श्रवणे नाहिक शुने,
उच्चै:स्वरे डाके आर्त्तनादे॥
हाहा राधाकृष्ण कोथा, कोथा आछ हे ललिता,
हे विशाखे देह दरशन।
हा चैतन्य महाप्रभु, हा स्वरूप मोर प्रभु,
हाहा प्रभु रूप–सनातन॥
काँदे गोसाई रात्रिदिने, पुड़ि जाय तनुमने,
विरहे हैल जर जर।
मन्द मन्द जिह्वा नड़े, प्रेमे अश्रु नेत्रे पड़े,
मने कृष्ण करये स्मरण॥

(श्रील दास गोस्वामीपाद शोचकका कुछ अंश)

(विरह–वेदना–ग्रस्त श्रील दास गोस्वामीपादका हृदय–भाव या चित्त–अवस्था–) श्रीराधाकृष्णके वियोगमें श्रील दास गोस्वामीपादने समस्त प्रकारका भोग छोड़ दिया, मात्र रूखा–सूखा चावल ही अपने जीवन–धारणका सार बनाया। जबसे श्रीचैतन्य महाप्रभुका विच्छेद हुआ, उस समयसे वे अन्न भी छोड़कर फल–गव्य आदि ही ग्रहण करने लगे। श्रील सनातन गोस्वामीपादके अदर्शन होनेपर फल–गव्य भी छोड़कर उस दिनसे मात्र जलपानके द्वारा ही जीवन–धारण करने लगे। श्रील रूप

गोस्वामीपादका विच्छेद होनेपर उस जलपानको भी त्यागकर 'हे राधे', 'हे कृष्ण' कहकर ही अपने प्राण रखते थे।

श्रीस्वरूप दामोदर प्रभुके अदर्शनमें तथा श्रीलरूप गोस्वामीपादके गणोंको नहीं देख पानेसे वे विरहमें व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगते। श्रीकृष्णकी कथाके अतिरिक्त कानमें और कुछ भी नहीं सुनते और उच्चस्वरसे आर्त्तनाद करते हुए सभीका नाम पुकारते थे—'हा हा श्रीराधाकृष्ण! आप कहाँ हैं? हे ललिते! आप कहाँ हो? हे विशाखे! मुझे अपना दर्शन दो। हा चैतन्य महाप्रभु! हा मेरे प्रभु श्रीस्वरूप दामोदर प्रभु! हा हा श्रीरूप और श्रीसनातन प्रभु!' इस प्रकार श्रीलरघुनाथ दास गोस्वामीपाद रात–दिन क्रन्दन करते थे, उनका तन और मन विरहमें तप्त हो जाता था और वे इस प्रकारके विरहसे जीर्ण हो जाते थे। उनकी जिह्वा मन्द–मन्दरूपसे स्पन्दन करती, प्रेममें नेत्रोंसे अश्रु प्रवाह होता और मनमें श्रीकृष्णका स्मरण किया करते।

श्रीमन्महाप्रभुके विरहमें श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी

निजत्वे गौड़ीयान् जगति परिगृह्य प्रभुरिमान्
हरेकृष्णेत्येवं गणन–विधिना कीर्त्तयत भोः।
इतिप्रायां शिक्षां जनक इव तेभ्यः परिदिशन्
शचीसूनुः किं मे नयन–सरणीं यास्यति पुनः॥

(श्रीशचीसून्वष्टकम् ५)

(श्रीरूपानुगवर श्रील रघुनाथ दासगोस्वामी प्रभुने श्रीचैतन्य महाप्रभुके विरहमें व्यथित होकर स्तव किया था—) जिन्होंने गौड़ीयजनोंको जगतमें आत्मीय रूपमें स्वीकार कर—"हे गौड़ीयजनो! तुम सब संख्यापूर्वक 'हरे कृष्ण' नामका कीर्तन करो"—इस प्रकारके वाक्यों द्वारा पिता जैसा उपदेश प्रदान किया था, वे शचीनन्दन श्रीगौराङ्गदेव पुनः क्या मेरे नयन गोचर होंगे?

श्रीलरूप गोस्वामीके विरहमें श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी

अपूर्व–प्रेमाब्धेः परिमलपयः–फेननिवहैः
सदा यो जीवातुर्यमिह कृपया सिञ्चदतुलम्।
इदानीं दुर्दैवात् प्रतिपद–विपद्दाव–वलितो
निरालम्बः सोऽयं कमिह तमृते यातु शरणम्॥

(प्रार्थणाश्रय–चतुर्दशकम् १०)

(श्रीरूपानुगवर श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी प्रभु श्रीरूप गोस्वामी प्रभुके अन्तर्धान होनेके बाद विरह–व्यथित होकर उनके आश्रयकी प्रार्थना कर रहे हैं—) मेरे जीवन, मेरे ईश्वर श्रीरूपगोस्वामीप्रभुने अपूर्व प्रेम–सिन्धुके सुनिर्मल जलके फेनसमूह द्वारा मेरे जैसे नितान्त अयोग्य व्यक्तिको भी कृपापूर्वक सर्वदा इस प्रकारसे सिक्त किया है जिसकी तुलना ही नहीं है। किन्तु अब दुर्दैववशतः पद–पदमें विपदरूप दावानलके द्वारा ग्रस्त होकर मैं आश्रयशून्य हो गया हूँ। अतएव यह आश्रयहीन व्यक्ति अब अपने ईश्वर श्रीरूप गोस्वामीके चरणकमलोंको छोड़कर और किसकी शरण ग्रहण करेगा?

शून्यायते महागोष्ठं गिरीन्द्रोऽजगरायते।
व्याघ्रतुण्डायते कुण्डं जीवातुरहितस्य मे॥

(प्राथनाश्रय–चतुर्दशकम् ११)

जीवित रहनेके एकमात्र उपाय स्वरूप श्रीलरूप गोस्वामीके विरहमें मुझे व्रज शून्यके समान, गिरिराज–गोवर्धन अजगरके समान और श्रीराधाकुण्ड भी बाघके खुले मुँहके समान लग रहा है।

श्रीमन्महाप्रभुके परिकरोंके विरहमें श्रीलनरोत्तम दास ठाकुर

सब हैला अदर्शन, शून्य भेला त्रिभुवन,
आँधल हईल एना आँखि।
काहारे कहिब दु:ख, ना देखाङ छार मुख,
आछि जेन मरा पशुपाखी॥
ये मोर मनेर व्यथा, काहारे कहिब कथा,
एछार जीवने नाहि आश।
अन्नजल विष खाई, मरिया नाहिक जाई,
धिक् धिक् नरोत्तम दास॥

(प्रार्थना)

(श्रीसनातन, श्रीरूप आदि गोस्वामीवर्ग और अपने अधीश्वर श्रीलोकनाथ गोस्वामी प्रभुके अदृश्य होनेसे व्यथित होकर श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने विलाप करते–करते कहा—) एक–एक करके सभी प्रभुवर अदृश्य हो गये, जिसके कारण यह त्रिभुवन शून्य हो गया और अब मैं इन आँखोंके समक्ष अन्धकार ही देखता हूँ। किन्तु अपने इस दु:खको मैं किसको बतलाऊँ? मैं मृत पशु या पक्षीके समान हो गया हूँ, अतएव मैं अपना यह तुच्छ मुख किसीको नहीं दिखलाऊँगा।

अब मैं अपने मनकी पीड़ा किसको कहूँ? इस अभागे जीवनमें मेरी और आशा नहीं है। अन्न–जलरूपी विष खा रहा हूँ, तब भी मर नहीं रहा हूँ। मुझ (अर्थात् श्रीनरोत्तम दास ठाकुर) को धिक्कार है! धिक्कार है!

तुया अदर्शन अहि, गरले जारल देही,
चिरदिन तापित जीवन।
हा हा प्रभु कर दया, देह मोरे पदछाया,
नरोत्तम लइल शरण॥

(प्रार्थना १६)

हे श्रीरूपगोस्वामी! आपके अदर्शन (विरह)रूपी सर्पके तीव्र विषसे मेरा शरीर जर्जरित हो रहा है जिससे मेरे प्राण चिरकालसे छटपटा (व्याकुल हो) रहे हैं। हा हा प्रभु! आप कृपाकर मुझे अपने श्रीचरणकमलोंकी छाया प्रदान कीजिए अर्थात् अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थान प्रदान कीजिए, मैं (नरोत्तम) आपकी शरणमें आया हूँ।

जे आनिल प्रेम–धन करुणा प्रचुर।
हेन प्रभु कोथा गेला आचार्य ठाकुर॥
काँहा मोर स्वरूप–रूप काँहा सनातन।
काँहा दास रघुनाथ पतित–पावन॥
काँहा मोर भट्टयुग, काँहा कविराज।
एककाले कोथा' गेला गोरा नटराज॥
पाषाणे कुटिबो माथा, अनले पशिबो।
गौराङ्ग गुणेर निधि कोथा गेले पाबो॥
से सब संगीर संगे जे कैला विलास।
से संग ना पाइया काँदे नरोत्तम दास॥

(प्रार्थना ४०)

(श्रील श्रीनिवासाचार्य प्रभुके विरहमें श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने इस गीतकी रचना करके विरह–व्यथित व्यक्तिकी चित्तवृत्तिका परिचय दिया है। तीव्रविरह अनुभूति करते हुए वे विलाप कर रहे हैं–) अहो! जो जगतके जीवोंपर प्रचुर करुणापूर्वक दुर्लभ प्रेमधनको लेकर आए, वे आचार्य ठाकुर (श्रीनिवासाचार्य) कहाँ चले गए? मेरे प्रभु श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप–सनातन तथा पतितोंको भी पावन करनेवाले रघुनाथ दास गोस्वामी कहाँ चले गए। मेरे गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, कृष्णदास कविराज गोस्वामी तथा स्वयं श्रीचैतन्यमहाप्रभु–ये सब एक साथ कहाँ चले गए? इन सबका वियोग मैं कैसे सहूँ? अपना सिर पत्थरपर पटक दूँ या आगमें प्रवेश कर जाऊँ, श्रीगौराङ्गके गुणोंके भण्डार इन सबको कहाँ पाऊँ। इन सब परिकरोंके साथ जिन्होंने लीला–विलास किया है, उन सबका संग प्राप्त नहीं होनेसे यह नरोत्तमदास विलाप कर रहा है।

वैष्णव सार्वभौम श्रीलजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके नित्यलीलामें प्रवेश करनेकी तिथिपर श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

पिछले वर्ष १३०१ बङ्गाब्द १४ फाल्गुन सोमवार प्रातः दस बजे भक्तोंके वृद्ध सेनापति श्रीलजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजने श्रीनवद्वीप–मण्डलके अन्तर्गत कोलद्वीप स्थित अपनी भजन कुटीरमें श्रीधाम प्राप्त किया है। सिद्ध बाबाजी महाशयने गौरभूमिको अन्धकारमय (अपने दर्शनसे वञ्चित) करके चिद्–जगत्में प्रवेश किया है। हम जड़ नेत्रोंसे उनका आनन्दजनक नृत्य–कीर्त्तन और नहीं देख पायेंगे। वे चिद्–जगत्में अवस्थित रहकर हमारे प्रति कृपाका विधान करें।

(सज्जनतोषणी वर्ष–२, पृष्ठ–२)

श्रील प्रभुपाद

अखण्डकालकी भूमिकामें सम्भोग (मिलन) और विप्रलम्भ (विरह) एक साथ अवस्थित हैं। जिस विरहकी अनुभूतिकी बात अखण्डकालकी भूमिकामें देखी जाती है, वह सम्भोगकी उत्कर्षताकी ज्ञापक है।

(मासिक गौड़ीय वर्ष—७, संख्या—११)

श्रीकृष्णविरह या चिद्–विप्रलम्भ ही जीवोंका एकमात्र साधन है। जड़ीय–विरहसे उत्पन्न निर्वेद जड़ीय आसक्तिको ही प्रकाश करता है, किन्तु श्रीकृष्णविरहसे उत्पन्न निर्वेद 'कृष्णेन्द्रियप्रीति–वाञ्छा' का श्रेष्ठ निदर्शन है।

(मासिक गौड़ीय वर्ष—७, संख्या—११)

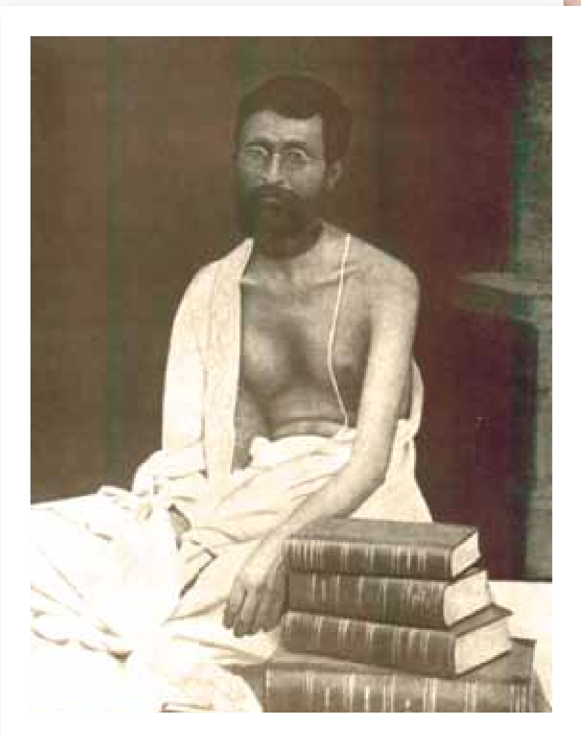

मूल महाजन श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीपादकी अपूर्व 'कृष्णेन्द्रियप्रीति–वाञ्छा', श्रीकृष्णसेवार्थी जीवोंका एकमात्र आदर्श और विशेषभावसे लक्ष्य करने योग्य विषय है—यही श्रीमन्महाप्रभु और उनके अन्तरङ्ग परिकरोंने परवर्तीकालमें आचरण करके दिखलाया है।

(मासिक गौड़ीय वर्ष—७, संख्या—११)

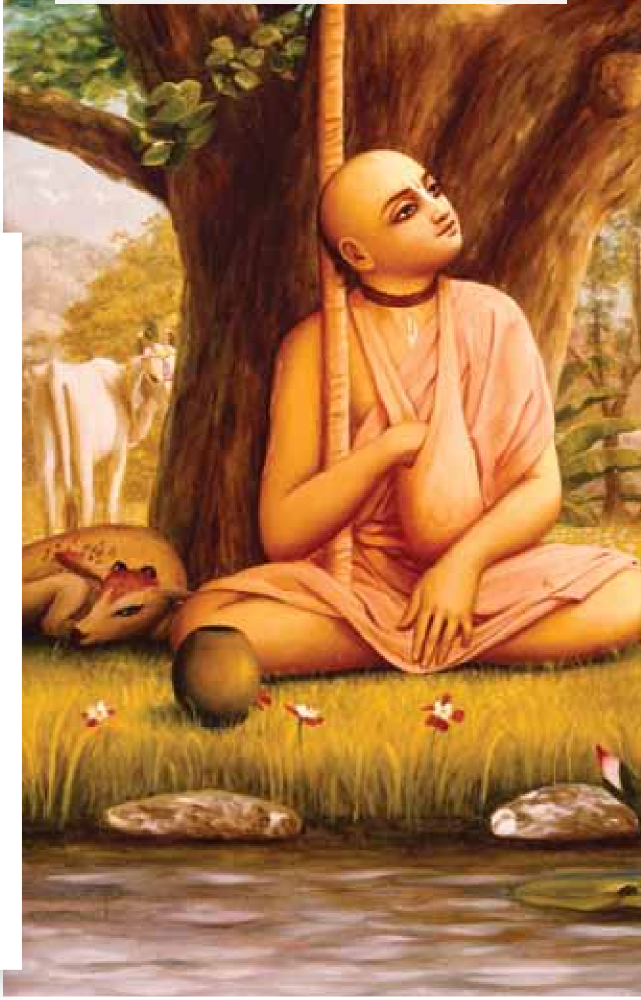

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजीके विरहमें श्रील प्रभुपाद

श्रीगौरविमुख भाव, राधाकृष्ण–प्रेमाभाव,
भकतिविनोद देखे जबे।
संसारेर देखि गति, कृष्णभक्तिहीन मति,
वातव्याधि–छले मौनी तबे॥
अवलम्बि जड़भाव, 'जडत्यागे व्रजलाभ',
—अनुक्षण एइ कथा मुखे।
कृष्णभक्तिशून्य–धरा, देखि प्रकाशिल जरा,
अन्तर–दशाय भजे सुखे॥
मिछाभक्त–अभिमाने, मूढ़लोक नाहि जाने,
अपराध कैल भक्त–पाय।
निज क्षुद्र अधिकारे, चाय भक्ते देखिवारे,
अवशेषे अपराध हाय!॥
जीवेर दुर्गति हेरि, कत अश्रुपात करि,
शुद्धभक्ति करिते प्रचार।
आदेशिल भक्तराज, कर गौरहरि–काज,
एबे तुमि करिया आचार॥
विनोदेर पदरेणु, स्मरि जबे आरम्भिनु,
'अनुवृत्ति' करिते लिखन।
अष्टश्लोक हले पर, भक्तिविनोद–वर,
विजय करिल व्रजवन॥
अद्य शुभ राधादिन, कर कृपा दीनहीने,
शुद्ध–भागवत–हरिजन।
'अनुवृत्ति' समापिया, तव करे समर्पिया,
दन्ते तृण करिया धारण॥

(उपदेशामृत, श्लोक ११ की अनुवृत्ति
(उपसंहार २३–२६, २८–२९))

जबसे श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने श्रीगौरांग महाप्रभुके प्रति विमुख और श्रीराधाकृष्णके प्रति प्रेम–रहित इस संसारकी गतिको देखा, तबसे उन्होंने सन्धिवात (rheumatism) के छलसे ऐसे श्रीकृष्णभक्तिहीन मतिवाले संसारीजनोंके प्रति मौन भाव धारण कर लिया।

जडभाव अवलम्बनकर निरन्तर अपने मुखारविन्दसे यही कहते थे—'जड़भावको त्यागनेसे व्रजकी प्राप्ति होती है'। इस पृथ्वीको कृष्णभक्तिसे शून्य देखकर उन्होंने बाहरसे वृद्धावस्थाको प्रकाश किया तथा अन्तरदशामें सुखपूर्वक भजन करते रहे।

व्यर्थ ही अपनेको भक्त होनेका अभिमान करनेवाले मूढ़ लोग यथार्थ भक्तोंके चरणोंमें अपराध कर देते हैं। अपने क्षुद्र अधिकारसे वे भक्तोंको देखना चाहते हैं, किन्तु हाय! अन्तमें अपराध ही घटित होता है।

जीवोंकी दुर्गति देखकर श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने कितने आँसू बहाये। भक्तराज श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने मुझे शुद्धभक्ति प्रचार करनेके लिए आदेश देकर कहा कि तुम श्रीगौरहरिका कार्य पूरा करनेके लिए इस समय (अर्थात् पहले) स्वयं शुद्धभक्तिका आचरण करो।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरकी चरणरजको स्मरणकर जब मैंने श्रीउपेदशामृतपर अनुवृत्ति लिखना प्रारम्भ किया, तब आठ श्लोकोंकी अनुवृत्ति पूर्ण होनेपर प्रभुवर श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने अप्राकृत व्रजवनकी ओर विजय यात्रा की।

आज इस शुभ श्रीराधाष्टमी तिथिपर शुद्धभागवत, श्रीहरिके निजजन श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इस दीनहीन व्यक्तिपर कृपा करें। अनुवृत्ति समापनकर दाँतों तले तृण दबाते हुए उनके श्रीकरकमलोंमें इसे (अनुवृत्तिको) समर्पण कर रहा हूँ।

नवद्वीप मायापुरे, प्रभुगृह–नातिदूरे,
अनुभाष्य कैल समापन।
श्रीगौरकिशोर दास, सम्प्रति कुलिया वास,
जाँर भृत्य–एइ अभाजन॥
आजि एइ सुख–दिने, भकतिविनोद बिने,
सुखवार्त्ता जानाब काहारे?
'अनुभाष्य' शुनि जेइ, परम प्रफुल्ल हइ,
उरुकृपा वितरिल मोरे॥
ताँहार करुणा–कथा, माधव–भजन–प्रथा,
तुलना नाहिक त्रिभुवन।
ताँर सम अन्य केह, धरिया ए नरदेह,
नाहि दिल कृष्णप्रेमधने॥
सेई प्रभु–शक्ति–पाइ, एबे 'अनुभाष्य' गाइ,
इहाते आमार किछु नाइ।
यावत् जीवन रबे, तावत् स्मरिब भवे,
नित्यकाल सेइ पद चाइ॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य २०/१५८
के अनुभाष्य का उपसंहार (२–५))

श्रीनवद्वीप मण्डलके अन्तर्गत स्थित मायापुर धाममें श्रीशचीनन्दन गौरहरिके जन्मस्थानके निकट स्थित स्थानपर (अर्थात् वर्तमान समयके मूलमठ श्रीचैतन्य मठमें) आज मैंने श्रीचैतन्यचरितामृतके 'अनुभाष्य' को लिखना समाप्त किया है। मैं दुर्भागा उन श्रील गौरकिशोर दास (प्रभु) का सेवक हूँ, जो कि इस समय कुलिया (अर्थात् श्रीनवद्वीन शहर) में वास कर रहे हैं।

आज इस परम सुखके दिनमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके प्रकट रूपमें विद्यमान नहीं रहनेके कारण मैं इस सुखवार्त्ताको किसको कहूँ? 'अनुभाष्य' [के एक अंश] को सुनकर वे अत्यधिक आनन्दित हुए थे और मुझपर महती कृपाका वितरण किया था।

उनकी करुणाकी बात तथा उनके माधव–भजनकी प्रथाकी इन तीनों लोकोंमें तुलना नहीं है। उनके समान अन्य किसीने भी इस मनुष्य देहको धारणकर श्रीकृष्णप्रेमरूपी धनका वितरण नहीं किया है।

उन प्रभुकी शक्तिको प्राप्तकर ही मैंने इस समय 'अनुभाष्य' का कीर्त्तन किया है, इसमें मेरा कुछ भी कर्त्तृत्व नहीं है। जब तक जीवन रहेगा, तब तक मैं भावमें विभोर होकर उनका स्मरण करूँगा।

[इस जीवनके उपरान्त भी जन्म–जन्मान्तरतक] नित्यकालके लिए मैं उन श्रीचरणकमलोंको चाहता हूँ।

श्रील प्रभुपाद एवं श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभुके विरहमें श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

आज प्रचुर हर्ष और आनन्दके बीच हृदयमें विषाद–वेदना ही जग रही है। हृदयकी वेदनाको हृदयमें अवरुद्ध (रोककर) रखनेकी चेष्टा करनेपर भी दीर्घ निःश्वास उसे व्यक्त कर रहा है। वही निःश्वास–वायु तरङ्गायित तथा विक्षोभित होकर शब्दके रूपमें परिणत हुई है। वह शब्द ही क्रन्दन है। उसकी भाषा अस्फुट, अर्द्धस्फुट, कण्ठरुद्ध एवं गद्गद है। तथापि छिपी हुई विरह–वेदना व्यक्त होनेसे ही कुछ प्रशमित होगी ऐसा समझकर श्रीश्रीगुरुपादपद्म एवं उनके एकनिष्ठ सेवक ठाकुर श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभुके अदर्शनसे

उत्पन्न क्लेशसे लाञ्छित (पीड़ित) लेखनी आज कम्पित पदमें धीरे–धीरे मन्थर गतिसे अग्रसर हो रही है।

आज वे दोनों ही मेरे जैसे घृणित पतिताधमका सङ्ग अत्यन्त विषवत् समझकर ऐसे स्थानपर चले गये हैं कि उनका सन्धान (समाचार) मिलना भी मेरे लिए दुःसाध्य (दुष्कर) है।

जिस प्रकार मेरी सेवामें त्रुटि देखकर भर्त्सना करनेके लिए आदर्श पुरुषोंका अभाव है, उसी प्रकार मेरी सामान्य सेवा–चेष्टा देखकर आनन्द प्रकाश करके उत्साह देनेवाले लोगोंका भी उतना ही अभाव है। हे श्रील ठाकुर महाशय! हे श्रील प्रभुपाद! आप दोनों ही मेरे परजीवनके एकमात्र नाविक हैं। आप उन्नतम परजगत्में अपनी–अपनी उन्नतम सेवाके आनन्दमें मग्न रहते हुए भी मेरे जैसे पतितको स्मरण करके प्रचुर आशीर्वाद करें, प्रचुर आशीर्वाद करें, प्रचुर आशीर्वाद करें। यही आज आपके चरणकमलोंमें सकातर प्रार्थना है।

(श्रीगौड़ीय–पत्रिका वर्ष–१, संख्या–१)

जिन लोगोंका चित्त जितने परिमाणमें श्रील गुरुदेवके चरणकमलोंमें आसक्त था, वे उतने परिमाणमें ही उनका विरह अनुभव करेंगे।

लौकिक लाभकी प्राप्ति नहीं होनेके कारण हो रहे श्रीगुरुके विरहकी तुलनामें "श्रीगुरुदेव हमें जो शिक्षा प्रदान करते थे, उस शिक्षाको प्राप्त करनेसे मैं वञ्चित हो गया हूँ"—ऐसे अभावकी अनुभूति अधिक उन्नत विरह है।

परन्तु आज श्रील प्रभुपादके पृथ्वीको कम्पित करनेवाले कठोर एवं वज्रके समान गम्भीर शिक्षा–वचनोंको स्मरणकर अपने दम्भरूपी पर्वतको ध्वंस करनेकी चेष्टा करना ही विरह–तिथिपर मेरा कर्त्तव्य है।

(श्रीगौड़ीय–पत्रिका वर्ष–१, संख्या–१०–११)

श्रील प्रभुपाद एवं सतीर्थ गुरुभ्राताओंके विरहमें श्रीश्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज

जे आनिल प्रेमधन (भक्ति–) विनोद–धाराय।
(सेइ) सरस्वती गुरु मोर कोथा गेला हाय॥
काँहा तीर्थयुग, भारती, अरण्य, आश्रम।
काँहा पर्वत, पूरी, काँहा मोर बोधायन॥

काँहा श्रीभक्तिसारङ्ग गोस्वामी उदार।
काँहा यति पद्मनाभ, सेवाप्राण याँर॥
काँहा केशव महाराज, काँहा नरहरि।
काँहा स्वामी महाराज पृथ्वी–प्रचारकारी॥
काँहा श्रीपरमानन्द, काँहा तुर्याश्रमी।
कोथा गेला श्रीसागर, भागवत स्वामी॥
कोथा भक्तिसुधाकर, भकतिविजय।
गुरुसेवा विना याँरा किछु ना जानय॥
काँहा नेमि, वैखानस, गिरि महाराज।
(प्रभुपाद) सरस्वती–परिकर वैष्णव–समाज॥
काँहा माधव महाराज श्रीदयित–दास।
श्रीगुरुर जन्मस्थान ये कैल प्रकाश॥
काँहाचार्य महाराज वृन्दावनवासी।
गौर–हरिनाम नेन बसि अहर्निशि॥
श्रीकृष्णकृपाय बहु पेयेछिनु सङ्ग।
दीन यायावर काँदे देखि सङ्ग–भङ्ग॥

(गीतिकार प्रपूज्यचरण त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अन्यतम परिकरोंमें–से एक हैं। श्रील नरोत्तम दास ठाकुरके द्वारा रचित विरह–गीतिके अनुरूप उनके द्वारा रचित यह गीति विरह–वेदनाकी अभिव्यक्ति है। अपने श्रीगुरुपादपद्म और सतीर्थ गुरुभ्राताओंके विरहमें व्यथित होकर जगन्नाथ पुरीधाममें श्रील प्रभुपादकी आविर्भावस्थलीपर उन्होंने इस गीतिका कीर्त्तन किया था–) अहो! जो जगतके जीवोंपर प्रचुर करुणापूर्वक दुर्लभ प्रेमधनको श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरकी धाराके माध्यमसे इस जगतमें लेकर आए, हाय! वे मेरे गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद कहाँ चले गए? श्रीभक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज, श्रीभक्तिविलास तीर्थ महाराज, श्रीभक्तिविवेक भारती महाराज, श्रीभक्तिप्रकाश अरण्य महाराज और श्रीभक्तिविज्ञान आश्रम महाराज कहाँ चले गए? श्रीभक्तिस्वरूप पर्वत महाराज, श्रीभक्तिश्रीरूप पुरी महाराज तथा मेरे[१] श्रीभक्तिप्रसून बोधायन महाराज कहाँ चले गए? उदार श्रीभक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज कहाँ है? सेवाप्राण श्रीभक्ति? यति महाराज तथा श्रीभक्ति? पद्मनाभ महाराज कहाँ चले गए? श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव महाराज तथा श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभु कहाँ हैं? सम्पूर्ण पृथ्वीपर प्रचारकारी श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज कहाँ है? श्रीपरमानन्द ब्रह्मचारी कहाँ हैं तथा श्रीभक्तिसम्बन्ध तुर्याश्रमी महाराज कहाँ है? श्रीभक्तिवैभव सागर महाराज, श्रीभक्तिमयूख भागवत महाराज कहाँ चले गए? श्रीगुरुसेवाके अतिरिक्त और कुछ नहीं जाननेवाले श्रीनारायणचन्द्र भक्तिसुधाकर प्रभु तथा सखीचरण बाबु भक्तिविजय प्रभु कहाँ चले गए? श्रीभक्तिविलास गभस्तिनेमि महाराज, श्रीभक्तिगौरव वैखानस महाराज, श्रीभक्तिसर्वस्व गिरि महाराज और श्रील सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके परिकर वैष्णव–समाज कहाँ हैं? जिन्होंने श्रीगुरु श्रीदयितदासका जन्मस्थान प्रकाश किया है, वे श्रीभक्तिदयित माधव महाराज कहाँ चले गए? जो रात–दिन श्रीगौर और श्रीकृष्ण नाम ग्रहण करते थे, वे श्रीवृन्दावनवासी श्रीभक्तिदेशिक आचार्य महाराज कहाँ चले गए? श्रीकृष्णकी कृपासे इन सबका बहुत सङ्ग प्राप्त हुआ था, किन्तु अब इन सबका सङ्ग–भङ्ग होते (छीनते) देख यह दीन यायावर क्रन्दन कर रहा है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष–३१, संख्या–६)

१ अर्थात् जिन्होंने मुझे मेरे गुरुपादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके श्रीचरणकमलोंमें समर्पित किया था, वे श्रीभक्तिप्रसून बोधायन महाराज।

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके विरहमें श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

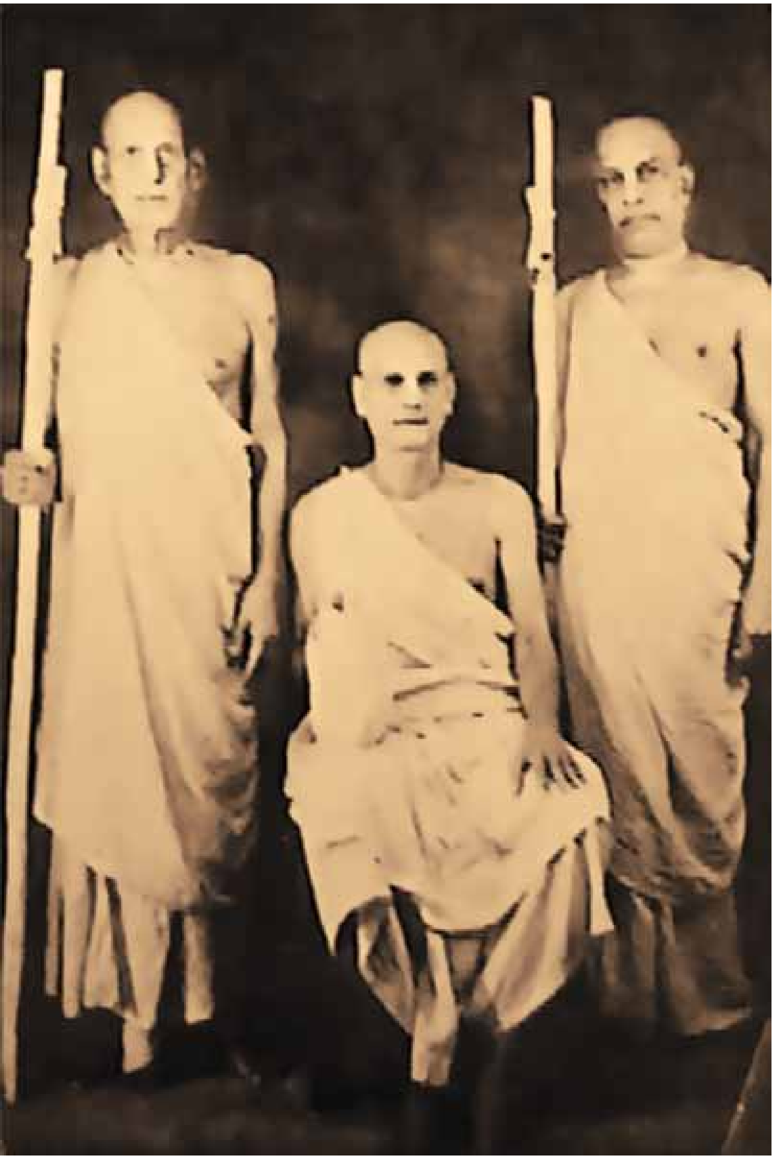

"श्रील केशव महाराजकी सर्वाधिक करुणा है, मुझे संन्यासी बनाना। मेरी यह प्रतिज्ञा थी कि मैं कदापि संन्यास ग्रहण नहीं करूँगा। परन्तु श्रील महाराजजीने मुझे जोरपूर्वक संन्यास प्रदान किया। आज वे मेरे प्रचारकी सफलताको देखकर निश्चय ही परमानन्दित हो रहे होंगे, क्योंकि पिछले वर्ष कोलकत्तामें जिस समय मैं अपने शिष्योंके साथ उनके दर्शनोंके लिए गया था, उस समय उनके शय्याशायी होनेपर भी वे मेरे प्रचारके विषयमें सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए थे। मेरा यह विश्वास है कि वे प्रकट या अप्रकट दोनों अवस्थाओंमें ही मेरे द्वारा अमेरिका, कनाडा, इङ्गलैंड, जर्मनी एवं प्रशान्त महासागरस्थित हनलूलू, जापान (टोकियो) आदि पाश्चात्य एवं पूर्वीय जगतमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके व्यापकरूपमें प्रचार होते देखकर अवश्य ही परमानन्दित हो रहे होंगे। मैं श्रील महाराजके निकट चिर कृतज्ञ हूँ।

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगं
अपाययत् मां अनभिप्सुमन्दम्।
श्रीकेशव भक्तिप्रज्ञान नामा
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥

[अर्थात् मुझ अन्धे और पीनेके अनिच्छुक व्यक्तिको भी जिन्होंने वैराग्य–विद्या और अपने भक्तियोग (रूपीरस) को जोरपूर्वक पान कराया है, ऐसे कृपाके समुद्र–स्वरूप श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंमें मैं शरणागत होता हूँ।]"

(श्रीभागवत पत्रिका वर्ष—१४, संख्या—७)

गौड़ीयसे उद्धृत विरहमूलक उक्तियाँ

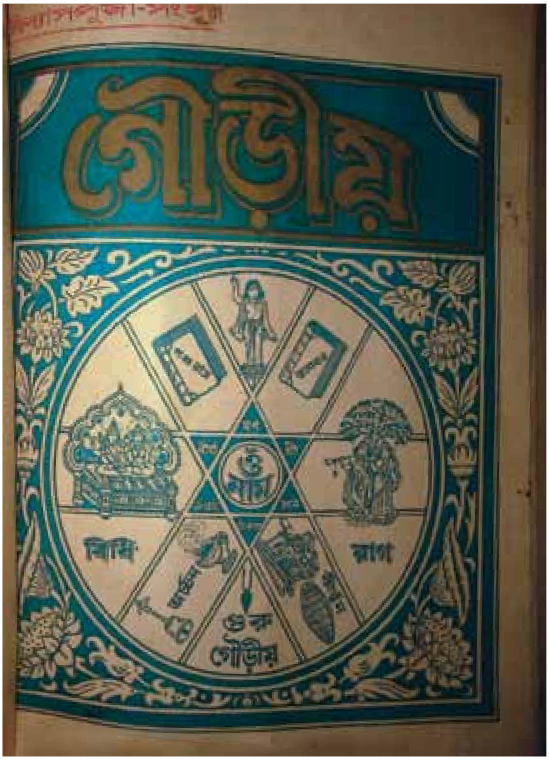

जीवकी सम्भोगवाद और भुक्ति–मुक्तिकी पिपासाके प्रबल होनेपर ही गौर–कृष्ण प्रेष्ठ श्रीगुरुपादपद्म अपनेको आत्मगोपन करते हैं। हम अनुभूतिहीन होकर प्रच्छन्न भोग और त्याग–पिपासाको हृदयमें छिपाकर जब केवल व्यवहारिकतामें हरिकार्य और हरिकीर्त्तनका छल करते हैं, केवल मुखसे 'पाषाणे कुटिबो माथा, अनले पशिबो। गौराङ्ग गुणेर निधि कोथा गेले पाबो' आदि महाजनोंके पदोंकी केवल आवृत्ति मात्र करके शान्त हो जाते हैं, एकनिष्ठ होकर श्रीचैतन्यमनोऽभीष्ट संस्थापक गुरुपादपद्मकी सेवामें नियुक्त न रहकर लाभ–पूजा–प्रतिष्ठा आदिको ही बहुमानन करते हैं, तभी परमकृपालु गौर–पार्षदगण आत्मगोपन करते हैं। हम जिनको प्रत्यक्षरूपमें विराजमान रहते समय अपनी इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञान द्वारा समझनेमें असमर्थ होते हैं, वे हमें अपने विरहमें अपनेको समझनेका द्वितीय सुयोग प्रदान करते हैं। गौरजनोंकी इतनी महान करुणा है।

(साप्ताहिक गौड़ीय खण्ड–१५, संख्या–२६)

विरह–रहित भजन सम्भोगवाद–रूप मात्र है। विरहमय कृष्णभक्तका सङ्ग प्राप्त होनेसे भजन उदित होता है एवं वैसे सङ्गसे वञ्छित होनेके कारण जो हृदय व्याकुल नहीं होता, वह नामापराधमय है। उस व्यक्तिका भजन–साधन लोगोंको दिखानेके लिए कपटता मात्र है।

(साप्ताहिक गौड़ीय खण्ड–१२, संख्या–१३)

श्रीभगवान् हमारे प्रति करुणा प्रकाश करके गुरुरूपमें जैसी प्रकटलीला विस्तार करते हैं, शिष्यकी पूर्ण सेवामयताको आकर्षण करनेके लिए वे उसी प्रकार अप्रकट–लीलाका भी अभिनय करते हैं। जो श्रीरूपानुग गुरुपादाश्रयका सौभाग्य लाभ करते हैं, श्रीगुरुपादपद्मके प्रकट कालमें उनकी सेवामें जैसा अनुराग नित्य नव–नव रूपमें वर्द्धित होता है, अप्रकटकालमें उसकी अपेक्षा दो, तीन या चार गुना अधिक अनुराग हुआ करता है। विरहकी ज्वाला भी दिन–प्रतिदिन तीव्र होते–होते तीव्रतम हो उठती है एवं श्रीगुरुपादपद्मका ही उपदेश पालनकर भजनकी परिपाटी नये–नये उत्कर्षको प्राप्त होती है।

(मासिक गौड़ीय वर्ष–५, संख्या–१)

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके विरहमें श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

विरह–वेदना गौड़ीयका प्राण

श्रीगुरु–गौड़ीयने हमारे समान जीवोंकी दुर्दशाको लक्ष्यकर मर्त्य–जगतसे अन्तर्हित होकर अप्राकृत व्रजधाममें अपनी अभीष्ट सेवामें योगदान किया है। कृष्ण–प्रिया शुद्धा–सरस्वतीने अपने अन्तरङ्ग प्रेष्ठ–निजजनको आकर्षण–पूर्वक आत्मसात कर लिया है, यह देखकर विरह–विधुर सारस्वत गौड़ीयगणोंमें हाहाकार उत्थित हो गया है। 'मणिको खो बैठे सर्प' के समान गौड़ीय–गगनके उज्जवलतम तारारूपी महानिधिको खोकर सारस्वत गौड़ीयगण

आज हा–हुताश कर रहे हैं। चारों ओर ही उनके विरहकी अभिव्यक्ति उपलब्ध हो रही है। आकाश–वायुमें आज वही विरह–वार्त्ता प्रतिध्वनित होकर एक महा–झंझावातकी सृष्टि कर रही है। गौड़ीय–गगन आज स्तम्भित और निर्वाक हो गया है। श्रीपत्रिका अपने प्रतिष्ठाताके वियोगमें म्लान और किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर विरह–ज्वालामें दीर्घ निःश्वास परित्याग कर रही है।

आज इस दुर्दिनमें हमें कौन सान्त्वना देगा? कौन स्नेहपूर्ण कठोर–वाक्योंके द्वारा हमारे ऊपर शासन करेगा? कौन हमें वेद–वेदान्त–उपनिषद–गीता–

श्रीगुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीपाद हमारे लिये जो उपदेश–निर्देश और शिक्षासार रखकर गये हैं, वही आजके दिन हमारा एकमात्र प्राण हो। उनकी वाणीका अनुसरण करके हम निरपेक्ष होकर सनातन–धर्मके आचार–प्रचारका सुष्ठुभावसे संरक्षण कर सकें, यही उनके श्रीचरणकमलोंमें एकमात्र भिक्षा–प्रार्थना है। वे गोलोकके उन्नतम प्रकोष्ठसे हमारे प्रति प्रचुर कृपाशीर्वाद वर्षण करें–जिससे हम उनकी वाणीका अनुसरण करनेमें सक्षम हो सकें।

भागवतादि शास्त्रोंके दुर्बोध्य निगूढ़तत्त्वोंकी सहज–सरल–प्राञ्जल भाषामें आदर–यत्नके साथ शिक्षा प्रदान करेगा? कौन इस बीसवीं–शताब्दीके युगमें वज्र–निर्घोष कण्ठसे जड़वादसर्वस्व, नास्तिक्य–मायावादी–कुतार्किकोंकी जिह्वा–स्तम्भन करते हुए कुयुक्ति, कुमतवादका खण्डनकर विशुद्ध–वैदान्तिक–सिद्धान्त स्थापित करनेका प्रयास करेगा? कौन अपामर (अयोग्य) व्यक्तियोंको भी भक्त–भगवान्‌की सेवामें अधिकार प्रदानकर शुद्धस्नेह–वात्सल्यसे उनका लालन–पालन करेगा? आज सत्य ही हम असहाय और निराश्रय हो गये हैं।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष–२१, संख्या–१)

हरि–गुरु–वैष्णव महिमा कीर्त्तन ही गौड़ीयोंका जीवन

श्रीगुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीपाद हमारे लिये जो उपदेश–निर्देश और शिक्षासार रखकर गये हैं, वही आजके दिन हमारा एकमात्र प्राण हो। उनकी वाणीका अनुसरण करके हम निरपेक्ष होकर सनातन–धर्मके आचार–प्रचारका सुष्ठुभावसे संरक्षण कर सकें, यही उनके श्रीचरणकमलोंमें एकमात्र भिक्षा–प्रार्थना है। वे गोलोकके उन्नतम प्रकोष्ठसे हमारे प्रति प्रचुर कृपाशीर्वाद वर्षण करें–जिससे हम उनकी वाणीका अनुसरण करनेमें सक्षम हो सकें। सारस्वत–गौड़ीय–गुरुवर्गके निकट हम बल–प्रार्थना करते हैं कि श्रीरूप–रघुनाथकी असमोर्ध्व करुणाकी कथा और सिद्धान्त जगतमें विस्तृत हों और विनोद–गौर–वाणीका अनुसरणकर हम अपना जीवन धन्य कर सकें।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष–२१, संख्या–१)

भगवान् और भक्तोंका आविर्भाव और तिरोभाव जड़वादियोंके लिए बोधगम्य नहीं

जड़वादी नास्तिकगण भक्त–भगवानके प्रति भी प्राकृत–ज्ञानसे भ्रम करते हैं। वे उन्हें कर्मफलबाध्य–जीव–विशेष मानकर केवलमात्र अपनी तत्त्व–उपलब्धिकी असमर्थताको ही ज्ञापन करते हैं। इससे उनकी अज्ञता और मूढ़ता ही प्रकाशित होती है। ''प्राकृत करिया माने विष्णु–कलेवर। विष्णु–निन्दा

नाहि आर इहार ऊपर ॥'' (अर्थात् जो श्रीविष्णुके कलेवरको प्राकृत और जड़ मानते हैं, इससे बड़कर श्रीविष्णुकी निन्दा और कुछ नहीं है।) जड़वादियोंके विचारसे भगवान् भी कर्मफलभोगी और प्राकृत–कलेवरके अधीन हैं। तभी वे माया–ग्रस्त जीवोंके जन्म–मृत्युके साथ अप्राकृत–तत्त्वके लिये प्रयुक्त ''आविर्भाव–तिरोभाव'' के पार्थक्यका अनुधावन नहीं कर पाते एवं इसके परिणाम–स्वरूप ''मूड़ी और मिश्री एक'' करके चिज्जड़–समन्वयवादी हो जाते हैं। भगवान्के आविर्भाव–तिरोभावके समान ही अतिमर्त्य–महापुरुषोंका गमनागमन भी उनकी इच्छाके अधीन ही होता है। यह बात मूढ़, दुष्कृति, नराधम, माया द्वारा अपहृत–ज्ञान और आसुरिक–लोग समझ नहीं पाते। वैष्णवोंका जन्म और कर्मबन्धन नहीं होता; वैष्णवोंको अपने कर्मोंका फल नहीं भोगना पड़ता।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष—२१, संख्या—१)

गुरु–भोगी और गुरु–त्यागियोंका सुविधावाद

श्रीगुरु–गौड़ीयकी तिरोधान–लीलाको एक वर्ष व्यतीत हो गया है। उनके विरहकातर सेवकोंने इस समयको 'क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत्' (श्रीमद्भा० १०/१९/१६) [अर्थात् गोपियोंको श्रीकृष्णके बिना एक क्षण भी सौ–युगके समान प्रतीत होता था] विचारसे अतिकष्टसे अतिवाहित किया है। दूसरी–ओर गुरुभोगी और गुरुत्यागी–सम्प्रदाय आज 'यखन येदिके वय' [अर्थात् जब जिस दिशामें प्रवाह बहता है] नीतिके अनुसार सुविधावादका आश्रय ग्रहणकर अपना–अपना प्राधान्य स्थापित करनेके लिये प्रयासी हैं। गुरु–गौड़ीय भोगी और त्यागी–कुलकी इस पद्मा–नीतिको अपने अप्राकृत जगतसे लक्ष्यकर निश्चिय ही इसे उनका भ्रम गिन रहे हैं। श्रीगुरुतत्त्वके विषयमें सन्देह करनेवाले और अविश्वासी शिष्याभिमानी ''मैं बड़ा हूँ और मैं अच्छा हूँ'' के रूपमें सजकर आज गुरु–सेवामें एकनिष्ठ भक्तोंकी अन्तर–निष्ठा और सेवावृत्तिकी परीक्षा करनेमें व्यस्त हैं। वे गुरुदेवकी अप्राकृत शिक्षा और वाणीका अनुसरण न करके अवैध अनुकरणमें परस्पर प्रतियोगिताका प्रदर्शन कर रहे हैं। उन्होंने मात्र इसको ही गुरुसेवा और भजन–चातुर्य मान लिया है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष—२२, संख्या—१)

श्रीगुरुदेव नित्य–उनकी शुभेच्छा ही एकमात्र सहायक

श्रीगुरुपादपद्मका 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि अर्थात् वज्रसे भी कठोर और फूलसे भी कोमल'—अतिमर्त्त्य दिव्य–जीवन–दर्शन और वाणी ही आज इस दुर्दिनमें हमारा एकमात्र आश्रयस्थल है। वे परजगतसे कठोर निर्देशके द्वारा निश्चय ही हमारे सभी दोष–त्रुटियोंका संशोधनकर नास्तिक्य–मतवादसे दूषित इस अनित्य जगतसे हमारा उद्धार करेंगे। आजके दिनमें उनकी शुभेच्छा और शुभाशीर्वाद ही हमारा एकमात्र सहायक, सम्बल और सान्त्वना है। अन्याभिलाष और भोगवादसे परिपूर्ण इस विश्वमें श्रीगुरु–भगवान्के द्वारा निर्दिष्ट पन्था–वास्तव सत्यधर्मका आश्रय न करनेपर कभी भी निस्तार सम्भव नहीं है। अनाश्रित–तत्त्वकी प्रतिष्ठा नहीं है–निरीश्वर युक्ति–तर्क ही साधकको विपथगामी करते हैं। 'तर्काप्रतिष्ठानात्' [अर्थात् तर्ककी प्रतिष्ठा नहीं है। इसके द्वारा कोई वस्तु स्थापित नहीं की जा सकती है, क्योंकि एक व्यक्ति तर्क और युक्तिसे जिसकी स्थापना करता है, कल उससे अधिक प्रतिभाशाली मनुष्य उसका खण्डन कर देता है। इसलिए तर्ककी अप्रतिष्ठा कही गई है।] ब्रह्मसूत्र (२/१/११) में इसीका विस्तारसे वर्णन किया गया है। 'आश्रय लइया भजे तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण' अर्थात् आश्रय लेकर भजन करनेवालेका श्रीकृष्ण त्याग नहीं करते हैं, किन्तु अन्य सभी (श्रीकृष्ण द्वारा त्यागनेके कारण) बिना किसी कारण भजन पथमें नहीं रह पाते–यही क्रमशः श्रीगुरु–आनुगत्य और गुरु–विरोधिताका वास्तविक निदर्शन है। श्रीगुरुदेवके मर्त्त्य–मानवके जड़नेत्रोंसे दूर रहनेपर उनका अस्तित्व

हे केशव! मैं एक क्षणके लिए भी आपके श्रीचरणकमलोंका परित्याग करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे नाथ! अतएव मुझे भी अपने साथ वैकुण्ठधाममें ले चलें।

और उनकी कृपाका अभाव प्रमाणित नहीं होता। जो इस प्रकारकी विरोधी–चिन्ता और भावधारामें अनुप्राणित हैं, वे ही न्यूनाधिक नास्तिक्य–विचारके अन्तर्भुक्त हैं। गुरुतत्त्वके प्रति अविश्वास और अश्रद्धा ही इसका मूल कारण है। जो श्रीगुरुदेवको कर्मफलबाध्य जीवविशेष और भोगका जनक (भोगकी प्रेरणा देनेवाला) मानते हैं, वे वञ्छित और गुरुतत्त्वसे सौ–योजन दूर अवस्थित हैं।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष—२२, संख्या—१)

श्रीगुरुचरणोंमें निवेदन

वर्त्तमान विश्वकी दुरवस्थापर विचारकर श्रीजगन्नाथ–श्रीभक्तिविनोद– श्रीगौरकिशोर–श्रीसरस्वती–श्रीकेशवादि गौड़ीय–गुरुवर्गने एक–एककर मेरे समान भजनविमुख व्यक्तिका परित्याग करके अपने–अपने धाममें शुभविजय की है। हे आश्रयकेशव! आपका उच्छिष्ट भोजी होकर भक्तोंके साथ भगवान्‌की अतिमर्त्त्य चरितावलीके श्रवण–कीर्त्तनके द्वारा विषय–वासनाओंका परित्यागकर इस दुस्तर संसार–सागरको पार कर सकूँ—यही मेरी एकमात्र आकांक्षा है। हे केशव! मैं आधे क्षणके लिये भी आपके श्रीचरणकमलोंका परित्याग करनेका इच्छुक नहीं हूँ; मुझे भी अपने धाममें कृपापूर्वक स्थान प्रदान किजिये।

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि॥

(श्रीमद्भा॰ ११/६/४३)

[अर्थात् हे केशव! मैं एक क्षणके लिए भी आपके श्रीचरणकमलोंका परित्याग करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे नाथ! अतएव मुझे भी अपने साथ वैकुण्ठधाममें ले चलें।]

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष—२२, संख्या—१)

श्रील गुरुपादपद्मकी करुणाकी प्रार्थना

हमारे द्वारा 'गुरुसेवक' के रूपमें चिह्नित होनेकी इच्छा करनेपर हम गुरुसेवासे दूर चले जाते हैं; किन्तु यदि हम 'गुरुदासानुदास' बन सकें, तो किसीकालमें श्रीगुरुदेवकी हार्दिक सेवाका अधिकार प्राप्त करनेकी सम्भावना है। हमारे श्रीगुरुपादपद्म जिस प्रकारके गुरुसेवकनिष्ठ–गुरुगतप्राण थे, हम भी उनके निकट गुरुसेवाके लोभसे ऐसी ऐकान्तिक निष्ठा और सेवादर्शकी प्रार्थनाकर अपना श्रद्धार्घ्य निवेदन कर रहे हैं। श्रीगौड़ीय–गुरुवर्ग हमारे प्रति प्रचुर आशीर्वाद करें, जिससे हम श्रीश्रीगौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारी और श्रीश्रीगौर–राधा–विनोदबिहारीजीकी अप्राकृत सेवामें अधिकार प्राप्त कर सकें। सर्वविघ्न विनाशक श्रीश्रीनृसिंहदेव हमारे भजनपथकी बाधा–विपत्तियोंको अनुग्रहपूर्वक दूर करें, यही उनके श्रीचरणकमलोंमें एकान्तिक प्रार्थना है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष—३६, संख्या—१)

'विरह' शब्दकी व्याख्या विशेषरूपसे दो क्षेत्रोंमें की गयी है—प्रथमतः गुरु–वैष्णवोंके अभावमें और द्वितीयतः भगवानके अभावमें भक्त विरहसे अक्रान्त होते हैं।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष—४३, संख्या—११)

श्रील गुरुदेवके प्रति उनके समकालीन गौड़ीय-वैष्णवोंकी पुष्पाञ्जली

श्रीश्रीमद्भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजकी मधुर स्मृतियाँ

[ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके श्रीजगन्नाथ पुरी धाममें अप्रकट लीला प्रकाशित करनेके दस दिन पूर्व लिखित]

॥श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–राधादामोदर जीउ॥

१९ दिसम्बर, २०१०

(प्रथमतः कंसटीला, मथुरामें स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ और फिर सेवाकुञ्जमें स्थित श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें वास करनेवाले और वर्तमानमें श्रीजगन्नाथ पुरीमें श्रीचक्रतीथमें वास कर रहे) पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके समीप!

मेरे सब प्रकारसे अयोग्य होनेपर भी आपने मेरे प्रति जो स्नेह प्रदर्शित किया था, उसकी स्मृति अभी तक भी मेरे चित्तमें जाग्रत है। कंसटीलामें स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें आपने मुझे अपने निकट बिठाकर हृदयसे जो उत्साह और हितके लिए जिस प्रकारसे चेष्टा की थी, उसकी स्मृति निश्चय ही आपके स्मृतिपटलमें भी होगी।

आपकी गुरुतर अस्वस्थताके दुःसंवादसे सभीके मर्माहत होनेपर भी, श्रीकृष्णकी इच्छासे आप पहलेसे अधिक स्वस्थ हुए हैं–सुनकर सभी उत्साहान्वित हुए हैं। आपने मेरी भी गुरुतर अस्वस्थताका संवाद सुना होगा। Angioplasty द्वारा artery blockage को निकालनेके लिए ५ stents(tubes) डाले गये हैं। Doctor ने मुझे पूर्णरूपसे एवं नियमित विश्राम करनेके लिए कहा है। मेरी गतिविधियाँ सीमित हो गयी हैं।

मेरी इच्छा है कि आपके साथ मेरा साक्षात्कार (भेंट) हो। यदि आप इच्छा करें, तो सभी कुछ सम्भव है। मेरी असंख्य दण्डवत् प्रणति स्वीकार कीजिए।

इति–

दासाभास

भक्तिवल्लभ तीर्थ

[श्रीश्रीमद्भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके वर्तमान आचार्य हैं और उसके प्रतिष्ठाता आचार्य नित्य–लीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके प्रमुख शिष्योंमें–से अन्यतम हैं। अपनी वृद्धावस्थामें उन्होंने विश्वमें भ्रमणकर कृपापूर्वक श्रीचैतन्य–वाणीका प्रचार–प्रसार किया है।

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके अप्रकट–लीलामें प्रवेश करनेके संवादको अपने सेवक श्रीप्रह्लाद दास ब्रह्मचारीके मुखसे सुननेके उपरान्त श्रीश्रीमद्भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजने जो कुछ अभिव्यक्त किया था, उसका श्रीप्रह्लाद दास ब्रह्मचारीने स्वलिखित रिपोर्टमें वर्णन किया था। निम्नलिखित अंश उसी रिपोर्टसे उद्धृत किया गया है।]

परम–पूज्यपाद श्रील नारायण महाराजके तिरोभावकी सूचना सुनकर श्रील गुरुदेवको स्मरण हुआ कि उन्होंने कुछ दिन पहले ही श्रील नारायण महाराजके लिए कुछ स्नेहपूर्ण शब्द लिखे थे। मैंने कहा–"श्रील नारायण महाराजको आपके द्वारा लिखित वे स्नेहपूर्ण शब्द मिल गये थे और उसे सुनकर उन्हें प्रसन्नता हुई। श्रीमाधवप्रिय प्रभुने मुझे बतलाया कि जब उन्होंने आपके शब्दों–"मेरी आपसे मिलनेकी अभिलाषा है।" को पूज्यपाद श्रील नारायण महाराजके सम्मुख पढ़ा, तो श्रील नारायण महाराजने उत्तर दिया कि–"यदि कृष्णकी इच्छा होगी, तो यह सम्भव है।" इसे सुनकर श्रील गुरुदेवने कहा–"अब यह सम्भव नहीं है।"

कुछ समयके पश्चात् श्रील गुरुदेवने कहा–"ऐसा नहीं है कि यह असम्भव है। कभी–कभी ऐसा (किसी वैष्णवके अप्रकट होनेपर भी उनके दर्शन करना सम्भवपर) होता है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने श्रील रूप गोस्वामीसे भेंट की, यद्यपि श्रील रूप गोस्वामी इस जगत्में प्रकटरूपसे विराजमान नहीं थे। श्रील रूप गोस्वामीने श्रील नरोत्तम दास ठाकुरको दूध पिलाया था।"

प्रह्लाद दास

२९ दिसम्बर, २०१०

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ

कोलकाता

विरहमें मनोहर स्मृतियोंका स्मरण

श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज

पूर्व परिचय

पूज्यपाद श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजका आविर्भाव बिहारके बक्सर जिलेके अन्तर्गत तिवारीपुर नामक ग्राममें हुआ था। उनका पितृदत्त नाम था नारायण तिवारी। दीक्षाके उपरान्त इनका नाम हुआ गौर नारायण दास। गौड़ीय–परम्पराके विचारोंमें इनकी अत्यधिक रुचिको देखकर श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज कहते थे कि मैंने उत्तर–पश्चिम भारतको विजय कर लिया है। थोड़े ही समयके मठवासके उपरान्त इनके गुरुदेवने इन्हें संन्यास प्रदान किया तथा इनका नाम हुआ श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज।

मथुरा मठमें वास

अपने गुरुदेवकी आज्ञासे श्रील महाराजजीने मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका सम्पूर्ण दायित्व लिया। उस समय मठमें धन तथा जनका बहुत अभाव होनेपर भी महाराजजी बहुत अच्छी तरह मठकी परिचालना करते थे।

वैष्णव–सेवाका आदर्श

श्रील महाराजजी मर्यादापूर्वक वैष्णव–सेवा करनेसे कभी चूकते नहीं थे। एकदिन मथुरा मठमें कोई उत्सव था, मैं भी निमन्त्रित था। जब सब लोगोंका प्रसाद इत्यादि हो गया, तब महाराजजी तथा मेरे लिए एक ही स्थानपर पत्तल लगाये गये। ब्रह्मचारियोंने अभी हमारे पत्तलमें प्रसाद परिवेषण करना आरम्भ ही किया था कि अचानक श्रील प्रभुपादके आश्रित प्रपूज्यचरण श्रीभक्तिप्रपन्न दामोदर महाराज जी आ पहुँचे। उन्हें आया देखकर महाराजजी बिना किसी विलम्बके उठ खड़े हुए, और मुझसे कहने लगे कि आप प्रसाद ग्रहण कीजिये, मैं श्रीभक्तिप्रपन्न दामोदर महाराजके स्नान, आह्निक इत्यादिकी व्यवस्था करता हूँ तथा उनके प्रसादके उपरान्त ही मैं कुछ ग्रहण करूँगा। मैंने कहा तब फिर मैं क्यों अभी प्रसाद पाऊँ, हम बादमें एकसाथ ही पायेंगे। और फिर हमने वैसा ही किया।

बृहद् मृदङ्ग सेवा

प्रपूज्यचरण श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रील प्रभुपादकी 'भागवत' नामक हिन्दी पत्रिकाके प्रकाशनको बन्द हुआ देखकर स्वयं मथुरासे 'श्रीभागवत पत्रिका' के नामसे पुनः हिन्दी पत्रिकाके प्रकाशनकी इच्छा व्यक्त की तथा इस कार्यका दायित्व भी उन्होंने अपने हिन्दी–भाषी सुयोग्य शिष्य श्रील महाराजजीको ही सौंपा। साथ ही बङ्गला भाषासे अन्य ग्रन्थोंको अनुवाद करनेकी सेवा भी उन्हें प्रदान की। अपने गुरुदेवकी इच्छापूर्ति करनेके उद्देश्यसे श्रील महाराजजीने बङ्गला भाषा सीखी तथा सर्वप्रथम श्रील भक्तिविनोद ठाकुर विरचित 'जैवधर्म' का सर्वांगसुन्दर अनुवाद प्रस्तुत करके हिन्दी–भाषी लोगोंको गौड़ीय–विचार जाननेका अवसर प्रदान किया। बादमें तो इन्होंने गौड़ीय–भण्डारके अनेकानेक ग्रन्थोंका हिन्दी क्या, विश्वकी विभिन्न भाषाओंमें प्रचार–प्रसार किया। जो लोग पहले गौड़ीय–मठके विरुद्ध कुछ बोल भी नहीं सकते थे, जब उन्होंने गौड़ीय–मठके व्यक्तियोंको साम्प्रदायिक सिद्धान्तोंमें थोड़ा कमजोर देखकर गौड़ीय–मठके विचारोंपर

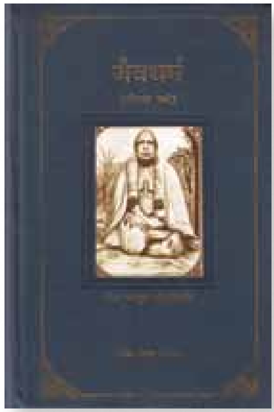

आक्रमण किया, तो श्रील महाराजजीने 'प्रबन्ध–पञ्चकम्' नामक ग्रन्थके रूपमें सिंहकी भाँति दहाड़ते हुए उन सब लोगोंका मुख बन्द कर दिया।

गुरुपादपद्मके अप्रकटके बाद

प्रपूज्यचरण श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अप्रकट होनेके उपरान्त गौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य पदपर यद्यपि श्रीभक्तिवेदान्त वामन महाराजजी नियुक्त हुए, तथापि मठ परिचालना, विशेष करके श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाकी परिचालना श्रील महाराजजी ही किया करते थे। श्रील वामन महाराज, श्रील त्रिविक्रम महाराज तथा श्रील नारायण महाराज ब्रजमण्डल, नवद्वीप, पुरुषोत्तम धाम—सब स्थानोंपर एक साथ ही रहते थे।

श्रीरूपानुग–गौड़ीय–परम्पराके विचारोंमें निष्णात

श्रीमती राधारानीकी सेवावृत्ति है कि श्रीकृष्ण–सेवामें यदि कोई सखी उनकी थोड़ी–सी भी सहायता कर दें, तो उसके प्रति कृतज्ञ बोध करना। कोई स्वतंत्र रूपसे श्रीकृष्णकी सेवा करे अथवा न करे, वे इसपर ध्यान नहीं देतीं, क्योंकि श्रीकृष्णकी समस्त सेवाओंका दायित्व स्वयं उनका है। श्रीराधारानीके इसी आदर्श 'तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना' को ही श्रीरूप–रघुनाथने अपने जीवनका आदर्श बनाया। जो श्रील रूप गोस्वामीके चरणकमलोंकी धूली बनना चाहते हैं, उन्हें भी श्रील रूप

श्रीलरूप गोस्वामीकी समाधिपर भक्तों सहित श्रील गुरुदेव

गोस्वामीके 'कृष्ण–सेवा' और 'दीनता' के आदर्शको ही अपने जीवनका सर्वस्व बनाना पड़ेगा। श्रील महाराजजीने श्रीरूपानुगा–गौड़ीय–परम्पराके इन सभी मूल विचारोंमें निष्णात होकर अनेकानेक सौभाग्यशाली जगत्वासियोंका मङ्गलविधान किया है।

आचार्यकी अस्वस्थलीला

जब मैंने श्रील महाराजजीकी अस्वस्थलीलाके विषयमें सुना, तब मैं स्वयं भी अस्वस्थ था। यद्यपि जब मैं चण्डीगढ़ जानेके लिए दिल्लीमें पहुँचा तब सुना कि श्रील महाराजजी भी दिल्लीमें है। दर्शनकी प्रबल इच्छा होनेपर भी शारीरिक अक्षमताके कारण उनके दर्शनोंके लिए नहीं जा सका। वास्तवमें वैष्णवोंके अस्वस्थलीला अभिनयको समझना बाहरी रूपसे बहुत कठिन है। वैष्णवोंका अस्वस्थ होना भगवान् एवं स्वयं उनकी लीला है।

लगभग ६० वर्ष पूर्व बंगालमें निपुण नाट्यकारोंकी एक मण्डली थी, जो उस समयके भारतीय समाजमें स्त्रियोंकी दुर्दशाको नाटकके माध्यमसे दिखलाते थे। उस नाटकमें एक प्रमुख स्त्रीका पात्र एक पुरुष निभा रहा था, क्योंकि उस समयके भारतीय समाजमें सम्मानित स्त्रियाँ नाटक–नौटंकीमें भाग नहीं लेती थीं। जब उस समयके एक प्रसिद्ध विद्वान ईश्वरचन्द विद्यासागरने उस नाटकके विषयमें सुना, तो वे एक दिन उस नाटकको देखनेके लिए उपस्थित हुए। वे नाटक देखकर बहुत मुग्ध हो गये। वे उस नाटकमें एक भारतीय महिलाके पात्र (जो एक पुरुष निभा रहा था) से इतने मोहित हो गए कि उन्होंने अपना जूता उतारा और उस पुरुषपर प्रहार किया, जो उस स्त्रीको यातना दे रहा था। नाटक–मण्डली आनन्द विभोर हो गयी कि इतने विद्वान व्यक्ति भी उनके कलाकारोंके अभिनयसे मोहित हो गये। उन्होंने विद्यासागरके जूतेका संरक्षण करके रखा। किन्तु नाटकमें भाग ले रहे सभी कलाकार, जो साधारण व्यक्ति थे, वे सब तनिक भी मोहित नहीं हुए।

इसी प्रकार वैष्णवगण सम्पूर्णरूपसे स्वस्थ तथा स्वतन्त्र होनेपर भी अस्वस्थ होनेका ऐसा अभिनय करते हैं कि बड़े–से–बड़े विद्वान व्यक्ति भी मोहित हो जाते हैं, किन्तु दूसरी ओर शरणागत छोटे–से–छोटे भक्त भी किसी प्रकारसे विचलित नहीं होते। इसमें विरोधाभास लग सकता है, किन्तु यही वैष्णवोंकी महिमा है। सेवकोंको सेवाका सौभाग्य प्रदान करनेके लिए ही वैष्णव अस्वस्थ–लीलाका अभिनय करते हैं। जब कोई आचार्य अस्वस्थलीला करते हैं, तो कनिष्ठ अधिकारियोंके लिए उनका दर्शन करना निषिद्ध है। केवल दूरसे प्रार्थनामूलक स्तुति करते हुए उनका सङ्ग करने की अनुमति है, क्योंकि आचार्यकी अस्वस्थलीला चर्म–चक्षुओंसे समझमें नहीं आ सकती। क्या वासुदेव विप्रके कोड़–रोग और गोपाल–चापालके कोड़–रोगमें अन्तर करना इतना सहज है? वासुदेव विप्र कहते कि मेरा यह रोग अच्छा है और गोपाल–चापाल अपने रोगको दूर करनेके लिए हा–हुताश हुआ करते।

क्या भगवान्‌के सङ्गको प्राप्त करनेवाले अर्जुनको मोह हो सकता है? क्या ऐसे भगवान् जिन्होंने उत्तराके गर्भमें परीक्षित्‌की ब्रह्मास्त्रसे रक्षा की थी, वे ब्राह्मण पुत्रके शाप लगनेपर उन परीक्षित्‌की उपेक्षा करेंगे? क्या justification है इसमें? वास्तवमें इन सबके पीछे अनेक गूढ़ रहस्य छिपे हैं, जिसे केवल शरणागत व्यक्ति ही समझ सकता है। वैष्णवोंकी अस्वस्थलीलाके पीछे भी इसी प्रकार अनेक गूढ़ रहस्य छिपे होते हैं, जिन्हें अधिकारी व्यक्ति ही समझ सकता है।

अप्रकटलीला

श्रील महाराजजीने अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी आविर्भाव तिथिके दिन तथा श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने अपने सतीर्थ श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी तिरोभाव तिथिके दिन अपनी अप्रकटलीला प्रकाशित की। इसके द्वारा इन तीनोंने अपने नित्य सम्बन्धकी जानकारी प्रदान की है। इस लीलाके द्वारा इन्होंने यही स्थापित किया है कि इनका सम्बन्ध पहले भी था, इस जीवनकालमें भी प्रकाशित हुआ हैं तथा भविष्यमें भी सदैव अविच्छिन्न रूपमें रहेगा।

समाधि

समाधिका अर्थ है एकाग्र मन और चित्तसे नित्यवस्तुकी सेवामें आविष्ट हो जाना। इसीको नित्यलीलामें प्रविष्ट होना कहा जाता है।

विरह

गुरुदेवके अप्रकटके बाद कौन वास्तवमें विरहका अनुभव करता है? जिसने उनके आचार–विचार, आदर्श तथा उनकी वाणीको भली–भाँति समझनेमें जितनी चेष्टाकी होगी, वह उतनी ही मात्रामें उनके विरहका अनुभव करेगा। विरहका अर्थ है—विप्रलम्भ अर्थात् प्रत्येक स्थितिमें उनका स्मरण होना। किसे विरह हो रहा है, किसे नहीं, इसका शब्दोंसे नहीं, बल्कि गुरुके तिरोभावके उपरान्त आचरणसे पता चलता है। सभीका विरह एक जैसा होगा, ऐसी बात नहीं। किसीमें श्रीलनरोत्तम दास ठाकुरके कीर्त्तन 'जे आनिल प्रेम धन करुणा प्रचुर' को गान करके हृदयमें दीनता आयेगी कि ओह! विरहमें कैसी अवस्था होनी चाहिये तथा मेरी कैसी अवस्था है, मुझे तो गुरुदेवके अप्रकट होनेपर भी लेशमात्र अभावका अनुभव नहीं हो रहा। कोई अन्य विचार करेगा कि अर्जुन तो कृष्णके विरहमें गाण्डीव तक को भी धारण नहीं कर पाये थे, और मैं तो नित्यप्रति वही कर पा रहा हूँ, जो पहले करता था, इत्यादि। वास्तवमें गुरुदेवके विचारोंका अनुशीलन करनेवालेको ही वास्तविक विरह अनुभव होता है। जगत्‌के लोग जो रोना–धोना करके विरहका भाव दिखलाते हैं, वह अस्थायी है, किन्तु वास्तवमें विरह–तत्त्व नित्य है, उसे नित्य बनाये रखना पड़ेगा अर्थात् गुरुदेवने जीवनमें जो पालन किया, आचरण किया, उसी विचारको पालन करनेमें परम उत्साहपूर्वक दृढ़व्रती बनना होगा। श्रील गुरुदेवका विचार श्रीरूप–रघुनाथ, श्रीनरोत्तम दास ठाकुरका ही विचार है, पृथक कुछ नहीं।

गुरुका उत्तराधिकारी वास्तवमें कौन?

कर्म जगत्‌में एक व्यक्ति सदैव धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिए चेष्टायुक्त होता है और उसके शरीर छोड़नेपर सभी पुत्रोंको उसकी सम्पत्तिका बराबर भाग मिलता है।किन्तु हरिभक्तिके राज्यमें, विशेषकर गौड़ीय–सम्प्रदायमें भक्तजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको पूर्णतः त्यागकर केवल परम पुरुषार्थ—कृष्ण–प्रेमको ही अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य स्वीकार करते हैं। जब वह इस जगत्‌को छोड़ते हैं, उनकी एकमात्र सम्पत्ति होती है उनका आदर्श, उनका परम पुरुषार्थसे सम्बन्धित आचार और प्रचार। **इसलिए एक व्यक्ति उतने ही परिमाणमें अपने गुरुदेवकी वास्तविक सम्पत्ति—उनकी असीमित पारमार्थिक सम्पत्तिको प्राप्त करेगा जितने परिमाणमें वह उनके प्रति शरणागत होगा।** श्रील महाराजजी श्रीमती राधारानीके निजजनोंके आनुगत्यमें, सर्वोत्तम 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्' के आचार–प्रचाररूपी उत्तमा–भक्तिका पालन करनेवाले थे,

श्रील महाराजजी उत्तमा–भक्तिका जो आदर्श छोड़ गये हैं, वही उनकी वास्तविक सम्पत्ति है। इस सम्पत्तिमेंसे जो जितना लेना चाहे, उतना ले सकता है, इसमें कोई किसी प्रकारकी आपत्ति अथवा विरोध नहीं कर सकता।

क्योंकि श्रीमन् महाप्रभुकी विचारधारामें निष्णात होनेके कारण वे जानते थे कि दूसरोंकी तो बात ही क्या, वे गोपियाँ जो श्रीकृष्णके लिए अपने चरणोंकी धूलि देनेके लिए प्रस्तुत थी, अनन्तकाल तक नरकमें जानेके लिए प्रस्तुत थी, वे भी जब अनुकूलाशक्ति–राधारानीके आनुकूल्य (आनुगत्य) के बिना अर्थात् उनके पीछे–पीछे नहीं, बल्कि उनसे आगे होकर श्रीकृष्णका अनुसन्धान करनेके लिए गयीं, तो पैठाग्राममें श्रीकृष्णने उन्हें अपने चतुर्भुजरूपका दर्शन कराया, किन्तु जो गोपियाँ राधारानीके आनुगत्यमें उनके पीछे–पीछे गयीं, उन्हें श्रीकृष्णके द्विभुज–रूपका दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अतएव श्रील महाराजजी उत्तमा–भक्तिका जो आदर्श छोड़ गये हैं, वही उनकी वास्तविक सम्पत्ति है। इस सम्पत्तिमेंसे जो जितना लेना चाहे, उतना ले सकता है, इसमें कोई किसी प्रकारकी आपत्ति अथवा विरोध नहीं कर सकता।

श्रील महाराजजीकी सेवा करनेका सुयोग

एक बार प्रपूज्यचरण श्रील भक्तिरक्षक श्रीधरदेव गोस्वामी महाराजके आश्रित श्रीभक्तिविजय पुरुषोत्तम तीर्थके द्वारा बनाये गये मठके विग्रह–प्रतिष्ठा महोत्सवमें प्रपूज्यचरण श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज, श्रील महाराज तथा मैं एकसाथ विशाखापट्टनममें उपस्थित थे। वहीं पर ही श्रील महाराजजीने बातों–ही–बातोंमें इच्छा प्रकाशित की कि वे जगन्नाथपुरी जाना चाहते हैं, किन्तु वहाँ उनके निर्माणाधीन श्रीनीलाचल गौड़ीय मठमें अभी रहनेकी ठीकसे कोई व्यवस्था नहीं है। उनकी बात सुननेके साथ–ही–साथ मैंने कहा आप हमारे मठमें रह सकते हैं, मैं सब व्यवस्था कर दूँगा। श्रील महाराजजी बहुत प्रसन्न हुए। यद्यपि मेरी और श्रील महाराजकी reservation एक दिन बादकी ही थी, तब भी मैं उसी दिन बिना reservation के श्रीजगन्नाथ पुरीके लिए रवाना हो गया। मैं उन्हें अपने कमरेमें ही रखना चाहता था और यदि मैं उनके सामने अपना सामान कमरेसे बाहर करता तो वे मुझे कष्ट नहीं देना चाहते और वहाँ रहनेमें संकोच करते। इसलिए मैंने पहलेसे ही आकर अपने सामानको ब्रह्मचारी आश्रममें रख दिया तथा अच्छी तरहसे कमरेको साफ–सुथरा करके महाराजजीके लिए प्रस्तुत कर दिया। मेरे प्रति मेरे गुरुमहाराजजीका आदेश था कि 'वैष्णव–सेवाके उपस्थित होनेपर उसे साथ–ही–साथ avail करना, हो सकता है कि बादमें ऐसी सेवाका अवसर कभी प्राप्त ही न हो।' और फिर हुआ भी ऐसा ही, बादमें महाराजजी सिंहानिया प्रभुके स्थानपर ही आकर ठहरते थे।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

[श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके संस्थापक नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके प्रमुख शिष्योंमेंसे एक हैं। ये सम्पूर्ण भारतमें चैतन्य महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करते हुए निरन्तर भ्रमण करते हैं। महाराजजी तत्त्व–सिद्धान्तके गूढ़ ज्ञाता और गौड़ीय–मठके इतिहासके कोषके रूपमें जाने जाते हैं।]

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रसाद पुरी महाराजजीकी स्नेहपूर्ण स्मृतियाँ

श्रीपाद नारायण महाराजजीकी भाषा अप्राकृत थी और शब्दोंका चयन अपूर्व था। उन्होंने ग्रन्थोंके माध्यमसे महाप्रभुके सम्प्रदायकी अत्यधिक सेवा की है। मैं उनका उच्छिष्ट भोजी दास हूँ।

उनके गुरु महाराजने उन्हें मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी देखरेखका दायित्व दिया था और मेरे गुरु महाराजने मुझे हमारे वृन्दावन मठकी देखरेखका दायित्व दिया था। इस प्रकार हम दोनों ही व्रजमें रहते थे और प्रायः एक दूसरेसे भेंट करते थे। उनकी प्रत्येक क्रिया अप्राकृत थी। भेंट होने पर अप्राकृत स्नेह प्रदान करते थे। मेरी ग्रन्थ–सेवामें भी वे सहायता करते थे और कहते थे—"अपने हिन्दी ग्रन्थोंके लिए आप हमारे ग्रन्थोंसे निसंकोच कुछ भी ले सकते हैं"। वे अति उत्साहपूर्वक ग्रन्थ–प्रकाशनसे सम्बन्धित मेरे समस्त प्रश्नोंका उत्तर देते थे।

वे मुझे पुनः मेरे गुरु महाराजकी सेवामें लाए थे। वे अप्राकृत जगत्के हैं। मैंने उनके मुखारविन्दसे शास्त्रोंके गूढ़ अर्थोंका श्रवण किया है, वे अत्यन्त गूढ़ विचार कहते थे। मैंने श्रीपाद नारायण महाराज और श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजको एक दूसरेके लिए क्रन्दन करते देखा है। एक गुरुका अपने शिष्यके प्रति किस प्रकारका अप्राकृत स्नेह होता है, वह मैंने श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजमें देखा है। ऐसा स्नेह बहुत विरल है। श्रीपाद नारायण महाराज और उनके गुरु महाराजका सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्तिकी समझमें नहीं आयेगा। जब वे मथुरा छोड़कर गोवर्धन रहने गए, तो वे अपने गुरुदेवके लिए क्रन्दन किया करते थे। उन्होंने जो लीलाकी है, उसे समझना अत्यन्त कठिन है।

[श्रीश्रीमद्भक्तिप्रसाद पुरी महाराजजी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके संस्थापक नित्य–लीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके मुख्य शिष्योंमेंसे एक हैं। उनके गुरु महाराजने उन्हें श्रीचैतन्य गौड़ीय मठकी वृन्दावन–शाखाके परिचालनका दायित्व और गौड़ीय–सम्प्रदायके ग्रन्थोंका हिन्दीमें प्रकाशनका दायित्व दिया था। उन्होंने अपना अधिकांश समय वृन्दावनमें सेवा करते हुए व्यतीत किया और अपनी वृद्ध अवस्थामें श्रील प्रभुपादके आविर्भाव स्थान, श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें निवास कर रहे हैं।]

विरह–संवाद

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक–आचार्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके चरणाश्रित डॉ॰ सत्यपाल गोयल विगत २८ नवम्बर २०१० को प्रातः ६–४५ बजे ग्वालियर स्थित अपने गृहमें ६९ वर्षकी आयुमें हरिस्मरण करते हुए स्वधामको प्राप्त हुए हैं।

उन्होंने सद्–गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए दिन–रात सद्–ग्रन्थोंके अध्ययनमें रहकर अनेक पारमार्थिक प्रबन्ध लिखे हैं। श्रीभागवत–पत्रिकाके सहकारी सम्पादक संघमें इनकी सेवाएँ सदैव स्मरणीय रहेंगी। 'कलियुगमें श्रीनाम–जप साधना' शीर्षकसे वर्षोंतक इनके प्रबन्ध श्रीश्रीभागवत–पत्रिकामें प्रकाशित होते रहे हैं।

इनकी स्वधाम प्राप्तिसे भक्तगण विरह सन्तप्त हैं।

विशेष ज्ञातव्य

श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके पाठकों और सदस्योंको सूचित किया जाता है कि श्रीपत्रिका इस सम्पूर्ण आठवें वर्ष श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके विरह–विशेषांकके रूपमें प्रकाशित होगी। अतः इस वर्ष पत्रिकाकी दो–दो संख्याएँ एक साथ दो–दो महीनोंमें एक बार प्रकाशित होगी।

प्रकाशनके सम्बन्धमें विवरण

(प्रपत्र–४, नियम–८)

१. प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.)
२. प्रकाशनकी अवधि—मासिक
३. प्रकाशकका नाम—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज
   पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.)
   नागरिकता—भारतीय
४. सम्पादकका नाम—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी,
   श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी
   पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.)
   नागरिकता—भारतीय
५. मुद्रक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज
६. उन व्यक्तियोंके नाम और पते जो इस पत्रके स्वामी हैं तथा जो समस्त पूंजीके एक प्रतिशतसे अधिकके भागीदार हैं—श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्ट

मैं त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त माधव महाराज एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य हैं।

मार्च, २०११
ह. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज

श्रील गुरुदेवके प्रति अपनी कृतज्ञताका स्मरण करते हुए श्रील गुरुदेवके चरणाश्रित (१) श्रीमती पुष्पा देवी कम्बोज (दिल्ली), (२) श्रीलाल प्रभु एवं उनकी पत्नी श्रीमती राधाकान्ति दासी (पर्थ, आस्ट्रेलिया) एवं (३) श्रीसुबल सखा दासाधिकारी (बङ्गलूरु) ने इस विरह–विशेषाङ्कके प्रकाशन हेतु आर्थिक योगदानके द्वारा विशेष सेवा–सौभाग्यको वरण किया है। इन सभीकी विशेष सेवाके लिये श्रील गुरुदेव अपने नित्यधामसे इन पर विशेष कृपा वर्षित करें—यही श्रील गुरुदेवके अभय चरणकमलोंमें विनम्र प्रार्थना है।

'श्रीश्रीभागवत पत्रिका' का सम्पादक एवं कार्यकारी मण्डल

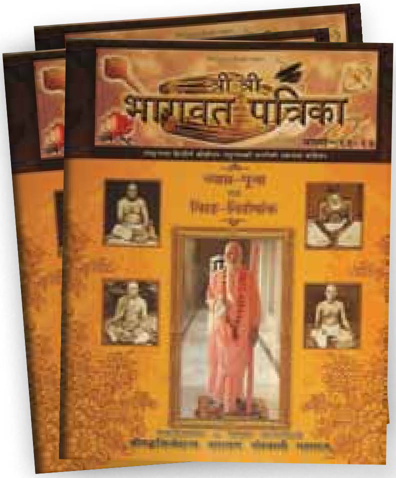

श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके ग्राहकोंसे वार्षिक सदस्यता–शुल्क भुगतानके लिए निवेदन

आदरणीय श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके ग्राहको!

आपसे यह निवेदन किया जा रहा है कि आपमेंसे जिन्होंने अभी तक इस वर्षका देय वार्षिक शुल्क भुगतान नहीं किया है, वह शीघ्र–अतिशीघ्र इस वार्षिक शुल्कका भुगतानकर पत्रिकाके माध्यमसे श्रीवैकुण्ठ–वार्त्तावह निरन्तर प्राप्त करनेके सौभाग्यको प्राप्त करें।

श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके इस अष्टम वर्षमें समस्त अंक रंगीन और सचित्र विरह–विशेषांकके रूपमें प्रकाशित होंगे, अतः केवल इस अष्टम वर्षके लिए ही वार्षिक शुल्क भारतीय सदस्योंके लिए ३०० रुपये तथा विदेशी सदस्योंके लिए ३० अमेरिकन डालर किया गया है। हम अपने सभी सहृदय पाठक–भक्तोंसे इस विषयमें सहयोगकी आशा करते हैं।

इस वर्षसे सदस्यवृन्द निम्न प्रकारसे सहजरूपमें शुल्क भुगतान कर सकते हैं:

भारतीय सदस्योंके लिए

नये सदस्योंके लिए

कृपया www.bhagavatpatrika.com वैबसाइटपर जायें और वहाँ दिये गये Instructions के अनुसार सदस्य बनें।

सदस्यता नवीकरणके लिए

(१) Bank to bank NEFT transfer

Account name: SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA
Account no. : 037201000010611
IFSC code: IOBA0000372
Bank: Indian Overseas bank

८७९१२७३३०६ phone number पर अपनी ग्राहक संख्या या अपना नाम और सदस्य शुल्कके साथ एक SMS भेजें।

अथवा

mathuramath@gmail.com में अपनी ग्राहक संख्या या अपना नाम और सदस्य शुल्कके साथ एक email भेजें।

(२) Demand draft or Cheque (account payee) payable to:
"SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA"
श्रीश्रीभागवत–पत्रिका कार्यालय,
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरा, उ.प्र. २८१००१ के पतापर
Demand draft or Cheque भेजें।

(३) Money order
श्रीश्रीभागवत–पत्रिका कार्यालय,
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरा, उ.प्र. २८१००१ के नामपर भेजें।

विदेशी सदस्योंके लिए

नये सदस्य तथा सदस्यता नवीकरणके लिए

कृपया www.bhagavatpatrika.com वैबसाइटपर जायें और वहाँ दिये गये instructions के अनुसार नये सदस्य बनें या अपनी सदस्यताका नवीकरण करें।

विदेशी सदस्योंके लिए इस वर्षसे "Paypal" द्वारा भुगतान करनेकी सुविधा उपलब्ध करायी गयी है। अधिक जानकारीके लिए www.bhagavatpatrika.com वैबसाइट देखें।

नमः ॐ विष्णुपादाय केशवप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त-नारायणेति-नामिने॥ १॥

इस भूतलपर अवतीर्ण श्रीकेशवके प्रेष्ठजन, पक्षान्तरमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके निजजन ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको मैं नमन करता हूँ।

श्रीकृष्णलीलाकथने सुदक्षं औदार्य-माधुर्य-गुणैश्च युक्तम्।
वरं वरेण्यं पुरुषं महान्तम् नारायणं त्वं शिरसा नमामि॥ २॥

श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका कीर्त्तन करनेमें परम दक्ष, औदार्य (महावदान्यता) तथा माधुर्य (मधुर-स्वभाव) आदि गुणोंसे युक्त, अभीष्टवर प्रदान करनेवालोंमें श्रेष्ठ तथा महान् पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके श्रीचरणकमलोंमें मैं नतमस्तक होता हूँ।

वन्देऽहं श्रीगुरुवरं श्रीरूपानुगप्रवरम्।
व्रजरसरसिकं च कृपामूर्तिं नारायणम्॥ ३॥

मैं उन श्रेष्ठ श्रीगुरु श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी वन्दना करता हूँ जो श्रीलरूप गोस्वामीके अनुगतजनोंमें अतिश्रेष्ठ, व्रजरसके परम रसिक और कृपाके मूर्तिमान विग्रह हैं।

युगाचार्यं प्रभुं वन्दे नारायणं करुणामयम्।
राधादास्यं लोभं दत्वा तारयते भुवनत्रयम्॥ ४॥

मैं उन करुणामय प्रभु श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी वन्दना करता हूँ जिन्होंने 'राधादास्य' प्राप्त करनेका लोभ प्रदानकर इस त्रिभुवनको तार दिया है, तथा इसीलिए जो श्रीबरसाना धामके श्रीव्रजाचार्य पीठ द्वारा 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित हुए हैं।

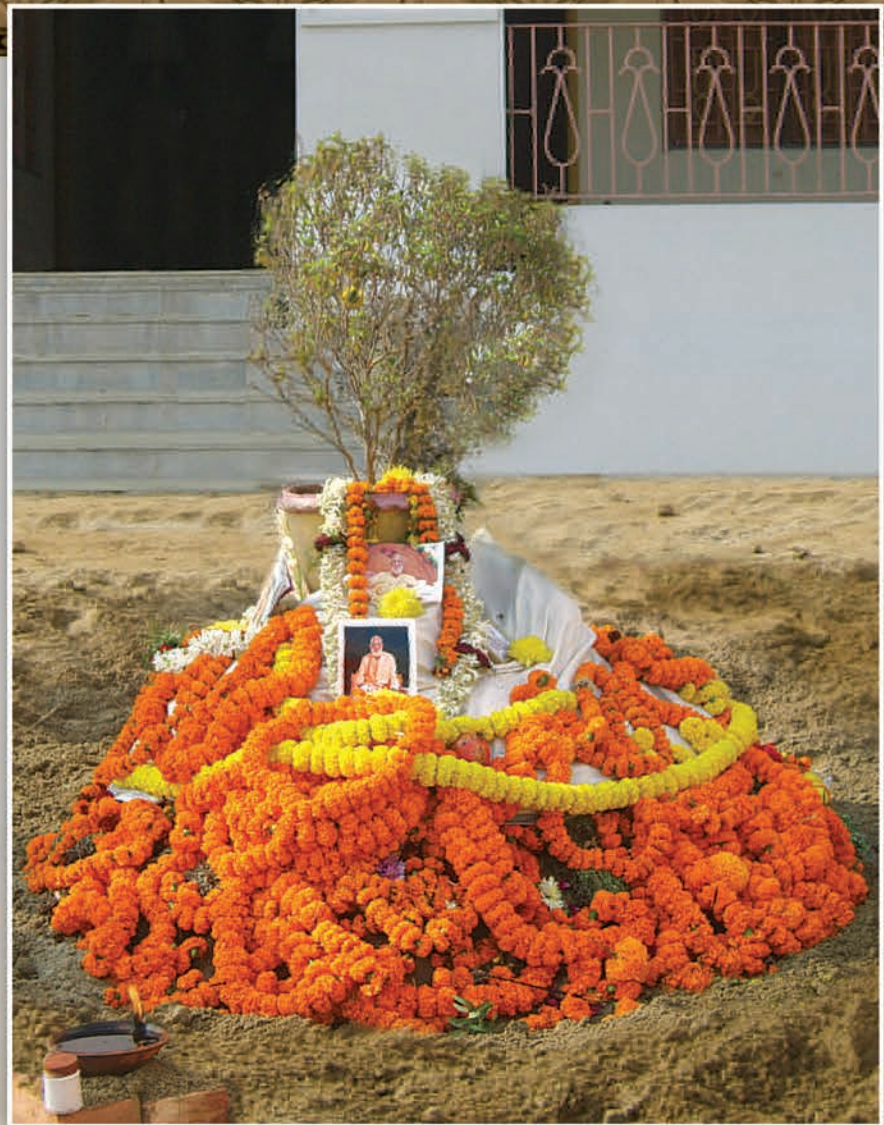

श्रील गुरुदेवका समाधि पीठ